प्रिय पाठक !

शील-ब्रह्मचर्यकी उपासना करनेसे आग जलके समान शीतल हो जाती है। विषधर सर्प पुष्पोंकी माला बन जाता है, सिंह मृगकी तरह सरल हो जाता है, मतवाला हाथी घोड़ेके समान सीधा बन जाता है, हलाहल विष अमृत हो जाता है, विशाल पर्वत मामूली पाषाण बन जाता है, खारो समुद्र क्रीड़ा-सरोवर हो जाता है, भयानक अरण्य भो सुन्दर उपवन बन जाता है। इतना ही नहीं, जिन धर्मात्मा महापुरुषोंने शीलकी भलीभांति उपासना की है, उनको देव-दानवोंने भी सिर झुकाया है। उनके बड़े-बड़े उपद्रव और संकटोंका नाश हुआ है। एवं बड़ी आसानीसे स्वर्ग तथा मोक्ष लाभ किया है। शीलके उपासकको काम-कुम्भ या कल्पवृक्षकी भी जरूरत नहीं रहती। जिस शील-ब्रह्मचर्यकी ऐसी असाधारण महिमा और शक्ति है, वह यदि इस मनुष्य-देहसे पालन नहीं किया गया तो मनुष्य-योनिमें जन्म लेना या न लेना एक समान है।

मनुष्य जीवन ही एक आदर्श और पवित्र जीवन है, जिसे प्राप्त कर आत्मा अपना और परायेका कल्याण कर सकती है। इसी योनिमें तप, जप, संयम नियमादि धार्मिक क्रियायें हो सकती हैं, और योनियोंमें नहीं। अतएव मानव-जीवनको बेकार न गांव कर यथाशक्ति नियम और धर्मका पालन करते हुए मनुष्य जीवनको सार्थक बनाना चाहिये।

जिस तरह विजया सेठानी और विजय सेठने कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षमें विशुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन कर संसारके सम्मुख आदर्श उपस्थित कर दिया है। उसी तरह हम लोगोंको भी उनके आदर्श चरित्रका अनुकरण कर अपने और अपनी होनहार सन्तानके जीवनको उज्ज्वल बनाना चाहिये। अस्तु!

इस जगह हम अपने परम पूजनीय धर्म-प्रवर्तक विद्वद्वर्य आगम-ज्ञाता पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय गांभिर्यादि गुण-विभूषित पार्श्वचन्द्र-गच्छीय भट्टारक श्रीपूज्य श्रीदेवचन्द्रसूरीश्वरजीके पूर्ण अनुगृहीत हैं। जिन्होंने समदड़ी (मारवाड़) के पार्श्वचन्द्र-गच्छीय श्रावकोंको धर्मोपदेश दे कर इस पुस्तककी ५०० प्रतियोंके ग्राहक बनवानेकी कृपा की है।

यद्यपि समदड़ीके पार्श्वचन्द्रगच्छीय सभी श्रावक स्थानकवासी संप्रदायके हैं; किन्तु आचार्य महाराजके बड़े ही अनुरागी हैं। उन्हीं लोगोंके विशेष अनुरोध करने पर आपने संवत १९७० के वर्षमें समदड़ीमें चातुर्मास किया था। उस समय आपके सदुपदेशसे समदड़ीके श्रावक मण्डलमें अच्छा उत्साह रहा और धर्म-प्रभावना भी खूब हुई। आशा है, आचार्य महाराज इसी तरह ज्ञानोपदेश करते हुए जैन समाजको उपकृत करेंगे।

पाठकोंसे निवेदन है, कि हमारी यह बीसवीं पुस्तक आपके कर-कमलोंमें जा रही है। आशा है, अन्यान्य पुस्तकोंके अनुसार इसे भी अपना कर हमारे उत्साहको बढ़ायेंगे। यही हमारा अन्तिम निवेदन है।

२०१, हरिसन रोड़
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन।
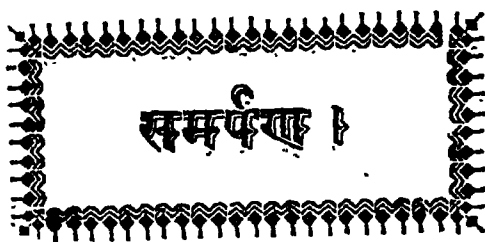
न्याय, व्याकरण, साहित्य-ज्ञाता, क्षमागुण-सम्पन्न, परोपकार-परायण, शासन-रक्षक, धर्मोपदेशक, श्रद्धेय परम पूजनीय पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्रीपूज्य-भट्टारक

## श्रीदेवचन्द्रसूरीश्वरजी

की परमपवित्र सेवामें।

पूज्यवर्य !

आपने आज पर्यन्त जैन-शासनके उत्कर्षके लिये जो अतुलनीय उद्योग एवं धर्मोपदेश देकर अनेकानेक प्राणियोंका उपकार किया है। हिन्दी जैन-साहित्य प्रचारके लिये जो आप अथाक परिश्रम कर रहे हैं। इत्यादि गुणोंसे आकृष्ट हो कर मैं यह "विजयसेठ-विजयासेठानी" नामक लघु पुस्तिका आपके कर-कमलोंमें सप्रेम भेंट करता हू। कृपा कर स्वीकार करेंगे।

आपका

काशीनाथ जैन।

# विजयसेठ-विजयासेठानी।

## पहला परिच्छेद

### व्रत-ग्रहण।

जैन-शासनके कर्म-क्षेत्रमें धर्मकी अग्नि धधक रही है। मनुष्य-जन्मको सार्थक करनेके लिये आत्म-शुद्धिका यज्ञ रचाकर, जीवनका प्रायश्चित साधित कर, मन, वचन और कायाके कार्योंकी छान-बीन कर जीवनके आदर्श गठित हुए हैं। धर्मके कार्यमें तत्परता, आत्माके लिये त्याग, मुक्तिके लिये महायत्न और परोपकारके निमित्त किये हुए बलिदानोंकी पुण्यमय स्मृति संसारकी आँखोंके सामने छायी रहती है। आत्म-मन्दिरके मधुर शब्द सुनानेवाले अमृत-नादने हजारों मुनि-पिपासुओंके भाग्य जगा दिये हैं। आत्म-धर्मियोंकी भावना-सृष्टिमें, महात्माओंके जीवन-वृत्तान्तोंमें, योगियोंके अचल ध्यान-स्मरणमें और सत्यकी खोजमें दुनियाके सारे बन्धन तोड़

"भव्य प्राणियो ! सुनो। यों तो बराबरही मेघसे बूँदें टपक-टपकर समुद्रमें पड़ती हैं; पर समयके प्रभावसे उसमें अन्तर दिखाई देता है। अकालमें पड़ी हुई बूँदें तो योंही पानीमें मिल जाती हैं; पर स्वातिकी बूँदें सीपीमें पड़कर मोती पैदा करती हैं। इसी प्रकार अपना यह मनुष्य-जन्म भी है। हम भी मेघकी बूँदोंकी तरह टपकते रहते हैं; पर यदि समयका विचार कर हम अपने जीवनको ले चलें, तो मोती बन जायें और मानव-जन्मको सफल कर लें। हमें सोचना चाहिये कि मनुष्य-जन्ममें सबसे चोखा रंग ब्रह्मचर्य-व्रतकीही बदौलत आता है। ब्रह्मचर्य जीवनके सभी सुखोंका लानेवाला और आत्म-गुहामें छिपे हुए प्रकाशको दिखला देनेवाला है। यह व्रत सबसे उत्तम माना जाता है; क्योंकि जिसने इसका मर्म नहीं जाना, वह इस संसार-रूपी जङ्गलमें भूलता हुआ धोखा खाता है। ब्रह्मचर्य देवताकी भाँति हमारा निरन्तर कल्याण करता है। इसमें वह शक्ति मौजूद है, जो स्वर्गके देवताओंको भी दास बना लेती है। जिसके पास ब्रह्मचर्य है, उसके पास सभी सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ आप-से-आप आ पहुँचती हैं। यह वह महान् तप है कि चाहे साधु हो या गृहस्थ, उसको सच्चा मनुष्य बना देता है। ब्रह्मचर्य-हीन मनुष्य पशुके समान है। पशु तो स्वभावतः ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं—वे इन्द्रियोंके दास नहीं, उसके विलासी नहीं। इस लिये ब्रह्मचर्य-हीन मनुष्योंकी जो पशुसे उपमा दी जाती है, वह ठीक नहीं। उससे बेचारे पशुओंका व्यर्थही अपमान होता है—वे तो स्वभा-

मनः ब्रह्मचारी होते हैं। होना तो यह चाहिये था कि मनुष्य ब्रह्मचारी होते। जो ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करता, उसकी आत्मा मूर्च्छित रहती है। जागृत आत्माएँ कभी अपने शरीरको गन्दा और दुखिया बनानेवाला काम नहीं कर सकतीं। जिसे आत्म-शान्तिकी दरकार हो, उसके लिये ब्रह्मचर्यही शीतल विश्रामका स्थान है।

इस प्रकार उपदेश देकर गुरु महाराज चुप हो रहे। उनके मुखसे निकलती हुई अमृतधारा बन्द हो गयी। यह उपदेश सुन, किसी जिज्ञासुने खड़े होकर पूछा,—"गुरुदेव! क्या अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करनेसे सभी सिद्धियाँ आपसे आप प्राप्त हो जाती हैं? क्या अकेले अखण्ड ब्रह्मचारीकेही हिस्से शान्ति पड़ी है?"

गुरुदेव बोले,—"सुनो: पहले यह समझो कि शान्तिके क्या मानी हैं। मनुष्य जब सोया रहता है, तब वह बड़ा शान्त मालूम पड़ता है; पर यह बाहरी शान्ति वास्तवमें शान्ति नहीं है; क्योंकि उसके हृदयमें शान्तिकी जड़ जमी हुई नहीं होती; इस लिये जब तक मनुष्य अपने रागों और फैले हुए वासनाओंके जालको नहीं समेटता, उन्हें वशमें नहीं करता, तबतक उसे कदापि शान्ति नहीं मिल सकती। इस शरीर-रूपी पृथ्वीपर वासना-रूपी अनेक नदियाँ निरन्तर बह रही हैं—ये मनुष्यकी आत्माको आत्मध्यानसे विचलित कर अपनी धारामें बहा ले जाती हैं। परन्तु जो मनुष्यात्मा समुद्रके समान शान्त और अचल होती है, उसमें वासनाकी धारा आकर विलीन हो जाती और तद्रूप बन जाती

है—उस आत्म-समुद्रकी अचलतामें तनिक भी फेरफार नहीं होने पाता; परन्तु जिस मनुष्यकी आत्मा छोटे-मोटे नालेकी सदृश है, उसे यह वासनाकी नदी छुलका देती और अपने प्रचंड प्रवाहमें वहा ले जाती है। इसलिये ठीक समझ रखना, जो अपने मनमें उपजनेवाली सभी वासनाओंको अपनी आत्मामें ही दवा देता है, उसेही सच्ची शान्ति प्राप्त होती है।"

पूछनेवालेने सरल-भावसे पूछा,—"परन्तु गुरुदेव! इसके साथही अन्य इन्द्रियोंका संयम करनेकी बात तो आपने वतलायीही नहीं।"

गुरुदेवने कहा,—"अरे, यह तो मनुष्य-जन्ममें शान्ति पानेकी पहली सीढ़ी है। जिसने इस वासनाको जीत लिया, वह तो सभी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करही लेगा। पहले इस प्रकारकी वासनाको विलुप्त कर देनेसे उसके साथही अन्य इन्द्रियोंकी वासनाएँ आत्मसागरमें मिल जाती हैं और आत्मा शान्तिकी गोदमें वैठ रहती है—उसमें सच्चा मनुष्यत्व आ जाता है। जो ऐसा नहीं करता, वह कभी आत्माकी शान्तिका अनुभव नहीं कर सकता। चाहे करोड़ोंकी सम्पदा धरी हो, सभी तरहके वैभव और आनन्द-विलासके साधन मौजूद हों, तो भी उसें किसी प्रकार शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।"

जिज्ञासुने फिर पूछा,—"गुरुदेव! इन इन्द्रियोंको किस प्रकार वशीभूत किया जा सकता है?"

गुरु,०—"सुनो। इन्द्रियाँ पालतू कुत्ते की तरह हैं। इनको कावूमें रखनेके लिये ब्रह्मज्ञानके परमाणुओंसे मनको भर देना

चाहिये, फिर तो ये उछलती-कूदती हुई इन्द्रियाँ संयमकी जंजीरमें बंध जानेपर कदापि आत्माके दवावसे निकल नहीं सकतीं। फिर तो उनके सामने हज़ार विलास-वैभवकी सामग्रियाँ लाकर उपस्थित कर दो, पर ब्रह्मज्ञानमें डूबा हुआ चित्त उनपर विजय कर ही लेगा। इस तरहका विजयोत्सव मानानाही सच्चे जैनोंका कर्त्तव्य हैं। इसका साधन ब्रह्मचर्य और दृढ़ निश्चय है। इसीमें जगत्के आलोक और परलोककी सिद्धियाँ भरी हैं।"

इस प्रकार जब गुरु महाराज भली भाँति ब्रह्मचर्यका महत्व लोगोंको बतला चुके, तब सब लोग अपने-अपने घर चले गये—उपाश्रयमें सन्नाटा छा गया—केवल कुछ थोड़ेसे गिने-चुने आदमी वहाँ पर रह गये।

इसी समय एक निर्दोष, अधखिलीकलीसी बालिका आनन्दके आँसू भरे हुई गुरुके सम्मुख आ खड़ी हुई और बड़ीही मीठी आवाजमें बोली,—"पूजनीय! आप मुझे यह व्रत दीजिये।"

बालिकाकी यह प्रार्थना सुन गुरुदेव हँस पड़े—उनकी हँसीका अर्थ यही था कि उन्हें बालिकाकी प्रार्थनामें कुछ शंका थी।

गुरुने कहा,—"बालिका! तू अभी निरी बालिका है। तुझे इस व्रतकी क्या आवश्यकता है?"

बालिका,—"गुरुदेव! आपका कहना यथार्थ है; परन्तु जीवन-भूमि पर काले बादल घिर आनेके पहलेही यदि मैं तैयारी कर रखूँ, तो इसमें क्या बेजा है?" व्रत ग्रहण करनेकी अभिलाषासे उस बालिकाके उल्लास-भरे नयन गौरवके साथ चमक उठे।

गुरु,—"पर यह ब्रह्मचर्य-व्रत बड़ाही कठिन है।"

वालिका,—"कठिन है तो क्या हुआ? सुन्दर भी तो है! इसीसे तो मेरा मन इसकी ओर खिंच रहा है।" यह कहते हुए वालिकाने निर्भयताके साथ लज्जाका जाल काट फेंका।

गुरु,—"अच्छा, तो वतलाओ। तुम किस तरह व्रत ग्रहण करना चाहती हो?"

वालिका,-मेरी इच्छा है कि जीवन-भर ब्रह्मचर्यका पालन करूँ।

गुरु,—"वालिका! तू यह क्या कह रही है, कुछ समझती भी है? किसी भी वृत्तिको एकबारगी दवा देनेसे आघात् प्रत्याघात-के नियमानुसार उस वृत्तिका वल उलटा वढ़ताही जाता है; इस लिये उसे धीरे-धीरे कावूमें लानेकी चेष्टा करनाही उचित है।"

वालिका,—"गुरो! आपका कहना ठीक है; परन्तु संयम की हुई जीवन-शक्ति तन-मनको पुष्टकर आत्मिक जीवनका साक्षात्कार कराती है। मैं उसी आत्मिक जीवनकी प्राप्तिके लिये अधीर हो रही हूँ। आप इसमें मेरी अवश्य सहायता करें।"

गुरु,—"अच्छा, तो तू मेरा कहा मानेगी?"

वालिका,—"जी हाँ।"

गुरु,—"अच्छा, तो देख, ब्रह्मचर्य एक महान् व्रत है, इसलिये तू इसका विषम भार नहीं उठा सकती। अतएव तू इतनाही प्रण कर ले, कि कृष्ण पक्षमें मन, वचन और कायासे जीवन-भर शुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन करेगी।"

वालिका,—"गुरो! मुझे यह प्रण स्वीकार है।"
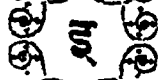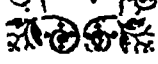
यह कह, गुरुकी चरण-वन्दनाकर वह बाला अपने जीवनको धन्य मानती, हँसती हुई घर चली आयी।

इस प्रकारके कठिन व्रतको जीवन-भर निभानेकी तीव्र उत्कण्ठा होना कोई मामूली बात नहीं है। यह बड़ा भारी आत्मिक गुण है। इस तरहका आदर्श जीवन पालन करनेकी जब मनुष्यमें उत्कण्ठा और उत्सुकता होती है, तब मनुष्य-मनुष्य नहीं रहकर देवता हो जाता है, मिट्टीसे प्रभुका रूप हो जाता है और उसी समय मानव-शक्तिका रहस्य जाननेकी अभिलाषा उसके हृदयमें उत्पन्न होजाती है।

यह बालिका कौन है? जगत्‌के कठिन तूफ़ानोंके सामने पहाड़की तरह छाती अकड़ाये खड़ी रहनेवाली यह व्रत-धारिणी देव-पुत्री, कच्छ-देशके किसी नगरमें रहनेवाले एक धनी सेठके घरमें प्रकाश फैलानेवाली एक रत्न थी। जगत् जिस वासनाके पीछे बावला हुआ फिरता है, उसीको इस प्रकार तिरस्कारके साथ हटा देनेवाली इस बालिका नाम विजया था। मनुष्यको पागल बना देनेवाली भूमिको पहचाननेवाली यह विजया साक्षात् देव पुत्री थी। जगत्‌को क्षणिक कल्पित सुख देनेवाली संजीवनीको त्याग देनेवाली यह त्यागिनी बालिका दिन-दिन धर्म-कार्यमें लीन रहती हुई रत्नमय जीवनकी निर्दोषताका आनन्द लेने लगी।

---

# दूसरा परिच्छेद।

## विवाह।

इसी नगरमें अर्हत्‌दास नामक एक सेठ रहता था। उसके पुत्रका नाम विजयकुमार था, जो आत्मयोगकी ललित पूर्णिमाकी प्रतिभाके समान और ऊपर लिखी हुई व्रतधारिणी वालिकाकी आशाओंका प्रेरक और प्रकाशक था। उसका तेजस्वी ललाट चक्रवर्त्ती राजाकी भाँति चमकता रहता था। वह तत्वज्ञानकी मूर्त्ति सा प्रतीत होता था और अपने संयमके कारण सूर्यकी भाँति सारे ग्रामको प्रकाशित करता रहता था। एक दिन वह भी उसी उपाश्रयमें गुरुके पास आ पहुँचा। उसके आतेही गुरुजीने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। विजयकुमार मन लगाकर सुनने लगा।

"महानुभावो! मानव-जीवनमें वहुतसे कण्टक हैं—उन कण्टकोंको दूर करते हुए अपने जीवनको आदर्श वनाओ। जीवनमें जिसे मौज-वहार, ऐश-आराम और सुख-चैन कहते हैं, वह सब शरदऋतुकी सन्ध्याके रंगके समान चञ्चल है—शीघ्र नाशको प्राप्त होनेवाला है। उससे मनुष्य आत्माके सनातन सत्यकी

पहचानकर विकारोंसे बचने नहीं पाता, उलटा उन्हीं विकारोंके वशमें हो रहता है। क्योंकि विकार देहके साथही लगे हुए हैं। आदर्श आत्माके लिये सन्देशका काम करते हैं। इस लिये यदि देहकी खातिरसे मनको हटाकर आत्माको राजा बनाना हो, आत्मबलकी वृद्धि करनी हो तो जीवनको सर्व श्रेष्ठ बनानेवाले ब्रह्मचर्य्यको सबसे पहले आदर देना चाहिये। आत्म-मुक्तिही साध्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य आदि व्रत उसके साधन हैं ब्रह्मचर्य इन सभी साधनोंमें मुख्य है। जीवन-विजयकी सभी कुञ्जियाँ ब्रह्मचर्यमें हैं। विषयकी इच्छाका लेश भी न उपजने पाये, यह एक वीर सेनापतिका काम है। ऐसे ब्रह्मचारीके आगे स्वयं इन्द्र भी सिर झुकाते हैं। ऐसे इन्द्र-वन्दित नरदेवको मृत्युका भय नहीं होता और वह कदापि प्रभुको भूल नहीं सकता। इसी लिये पञ्च महाव्रतोंमें शास्त्रकारोंने इस व्रतको श्रेष्ठ बतलाया है; क्योंकि इस एकही व्रतका भङ्ग होनेसे और चारों व्रत भी भंग हो जाते हैं। ऊपरी चमक-दमक और सुन्दरता पर मोहित होकर हड्डी-चमड़ेके लोभमें फँसे रहनेवाले नरक-गति प्राप्त करते हैं; क्योंकि उनके पापकी कोई सीमा नहीं है।"

यह कह गुरुदेव चुप हो रहे। सब चले गये; पर विजयकुमार वहीं ठहरा रहा।

जीवन नौकाका यह चतुर खिवैया मूर्खसा बना हुआ गुरुके पास आया और विनयके साथ गुरुको प्रणामकर बोला,—"गुरुवर! आप मुझे ब्रह्मचर्य व्रतमें दीक्षित कीजिये।"

उस समय उसकी मुखाकृति क्षीर सागरके समान उज्ज्वल तथा आदर्शके संगीतसे पूर्ण मालूम पड़ती थी—मानों वह साक्षात् धर्मयुद्धका रणक्षेत्र हो। उसका प्रश्न सुन गुरूने मुस्कराते हुए पूछा,—"भाई! तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं?"

विजयकुमारने कहा,—"गुरुदेव! मैं तो अभी कौंराही हूँ; किन्तु विवाह होने पर भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता हूँ।" कुमारके इन शब्दोंमें एक अनोखी स्फूर्त्ति थी। इन्द्रियोंके कामाध्यक्षोंको मूर्च्छित करनेवाले इन शब्दोंको सुनकर गुरुजी भी थोड़ी देरके लिये आश्चर्यमें डूब गये। उन्हें इस संसारमें कुमार कोई शान्तिका दूत सा मालूम पड़ा। गुरुके प्रश्नका उत्तर दे कुमार हँसता हुआ उनकी ओर चुपचाप देखता रहा। वह उनके उत्तरकी राह देख रहा था; पर इधर गुरुजी इस विचारमें पड़े थे कि यह तो कोई महान् आत्मा मालूम पड़ती है। ओह! इसकी आँखोंसे आनन्द बरस रहा है, व्रत लेनेका सच्चा आग्रह प्रकट हो रहा है। अहा! इसका हँसता हुआ चेहरा कितना सुन्दर प्रतीत हो रहा है। इसकी आँखोंकी पुतलियाँ कैसी चमक रही हैं। आत्माके भीतरसे निकला हुआ यह मधुर स्वर कैसा गूँज रहा है कि मैं अभी कौंरा हूँ! अहा कैसे सुन्दर शब्द हैं।" इसी तरह गुरुजी बड़ी देर तक सोच विचारमें ही पड़े रहे।

अन्तमें जब विजयकुमारसे न रहा गया, तब उसने पूछा,—"गुरुजी! आप किस विचारमें पड़ गये? आप विश्वास करें, मैं आपके दिये हुए व्रतका तन-मन-वचनसे मरण पर्यन्त पालन करूँगा।"

गुरु,—"भाई! तुम्हारे विषयमें मुझे तनिक भी शङ्का नहीं है। मैं तो तुम्हारी दिव्यताके भीतर प्रवेश कर रहा था। बोलो कितने दिनोंके लिये व्रत लेते हो?"

विजयकुमार,—"पूज्यवर! मैं जीवन-भर शुक्ल-पक्षके दिनोंमें अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करूँगा।"

गुरु,—"भली भाँति विचार कर कह रहे हो न?"

विजयकुमार,—"जी हाँ।"

उसी समय विजयकुमारने दोनों हाथ जोड़ गुरुसे व्रत ग्रहण किया। तदनन्तर विजयकुमारने कहा,—"गुरुवर! आज आपने मेरे जीवनमें रत्न ज्योति जगाकर मुझे बड़ाही उपकृत किया।"

गुरु,—"अरे, इसमें उपकार काहेका और कृतज्ञता कैसी? यह तो मेरा नित्य-कर्म है। परस्पर धर्मका पालन करनेमें ही आत्मकल्याण है।"

उस समय बालककी आँखोंसे कृतज्ञता साफ़ प्रकट हो रही थी। कुछही देर बाद वह साधुको सविनय वन्दना करता हुआ अपने घर चला गया।

इस समय बालककी अवस्था बारह-तेरह वर्षसे अधिक नहीं थी; परन्तु इस अल्प अवस्थामें भी उसके मुखपर सदा वृद्ध पुरुषोंकीसी गम्भीरता विराजती रहती थी। इसी कमसिनी-छोटीवय में, बाल्य और युवा अवस्थाओंके इस संधिकालमें इस मानव-हँसने ब्रह्मचर्यका व्रत ग्रहण कर लिया।

ज्योंही वह घर लौटकर आया, त्योंही उसके पिताने उसके

ब्याहकी बात छेड़ी। पिताने कहा,—"पुत्र! आज इस नगरके सुप्रसिद्ध व्यापारी और लक्ष्मीपात्र सेठ धनावहके यहाँसे तेरे ब्याहकी बात आयी है। कह, तेरी क्या इच्छा है?"

पुत्रने कहा,—"पिताजी! इसमें मुझसे क्या पूछना है? आपकी जो इच्छा हो, कर सकते हैं।"

इस प्रकार पुत्रकी सम्मति पाकर उसके पिताने उसका ब्याह धनावह सेठकी पुत्री विजयाके साथ करना स्वीकार कर लिया। मँगनी हो गई। दोनों ओरसे सब बातें पक्की हो गयीं। साल भर बाद दोनोंका ब्याह बड़ी धूम-धामके साथ कर देनेकी तैया-रियाँ होने लगीं। विजयकुमार वर-वेशसे सजा हुआ कन्याके घर आया। यथा समय कन्या मण्डपमें लायी गयी। अनेक मनोरथोंकी माला मन-ही-मन फेरती हुई वह कन्या अपने अधखुले घूँघटकी ओटसे शील-सङ्कोच भरी दृष्टिसे अपने स्वामी की ओर देखने लगी। कहीं कोई सखी देख लेगी तो दिल्लगी करेगी, इसी डरसे वह उनकी बातोंका जवाब देनेमें देर नहीं करती और उनकी नजरोंसे अपने स्वामी-दर्शनकी बात छिपाती है और योंही इधर-उधर देखने लगती है। उसके शरीर पर तरह-तरहके गहने सोह रहे हैं, जो रह-रहकर मधुर ध्वनि पैदा कर रहे हैं।

इधर बाहर-भीतर दोनों जगह तरह-तरहके बाजे बज रहे हैं। रमणियाँ मधुर स्वरसे ब्याहके मंगल-गीत गा रही हैं। आज दो जीवोंके हृदय एक होनेवाले हैं, इस लिये दोनोंके चित्तमें तरह-

तरहकी आशाएँ उदय हो रही हैं और वे अपने भावी जीवनकी कल्पनासी कर रहे हैं। आखिर मन्त्र-पाठके साथ-साथ कन्या-का हाथ स्वामीको पकड़ा दिया गया—मानों माँ की गोदसे अलग होकर कन्या आजसे स्वामीकेही हाथमें सौंप दी गयी।

आज इन दो जीवोंकी जीवन-यात्राका मानों आरम्भ हुआ। इस यात्राके रास्तेमें काँटे-कण्टक, नदी-समुद्र, घाटी और पर्वत, सभी कुछ मिल सकते हैं। उन सबको एकही साथ पारकर एकही साथ डूबने, मरने या पार-उतरनेका उन्होंने प्रण लिया है।

गुरु महाराजने कहा,—"भाइयो! देखो। हाथमें हाथ लेनेका अधिकार दासीका नहीं, मित्रका है, इसलिये स्त्रीको दासी नहीं, बल्कि मित्र समझना चाहिये। जीवनकी इस दुर्गम घाटीमें यह हाथ शत्रुओंका नाश और विरोध भावनाका संहार करनेवाला है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको यह सोचना चाहिये कि एकके साथ दोनोंके हाथमें विजय-लक्ष्मी मिलेगी और उनके हाथमें नवीन-प्रकाश होगा; पर जो इसके विपरीत सोचते हैं, उनके लिये इस मणिका तेज अन्धकारमय हो जाता है। यही आजके इस माङ्गलिक प्रसंगका रहस्य है।"

इसके बाद ब्याहकी और-और रीतियाँ पूरी की गयीं। अन-न्तर बेटीकी विदाईका अवसर आ पहुँचा। उस समय माताने ससुराल जाती हुई कन्याको इस प्रकार उपदेश देना आरम्भ किया,—"बेटी विजया! आजसे तू मेरी न रहकर सास-ससुर-की होगई। अब वेही तेरे माँ-बाप हुए। तू उनपर पूरी श्रद्धा-

भक्ति रखना। यहाँ तो तू लाड प्यारमेंही पल्ती रही; पर वहाँ खूब समझ बूझकर चलना होगा; कभी किसीको कड़ी बात न कहना। यह कहती हुई माता रो पड़ी।" बेटीकी आँखोंसे भी आँसू टपक पड़े।

इसके बाद विजया अपनी सहेलियोंसे विदा हुई। सब जी भरकर खूब रोयीं। इसके बाद फिर माताने अपनी पुत्रीको पास बुला प्रेमसे उसको बार बार गले लगाते हुए कहा,—"बेटी! आजसे तू एक अनोखी दुनियामें जा रही है। अबसे तुझे नये-नये लोगोंसे नेह लगाना पड़ेगा—सबको अपनी रहनसे खुश रखना पड़ेगा। बेटी! रो रोकर कलेजा न सुखा। देख, तुझे आप दुःख उठाकर भी ससुरालके लोगोंको सुखी करना पड़ेगा, किसीको रत्तीभर कष्ट पहुँचाना नहीं होगा। इसीसे मेरे कुलका नाम भी ऊँचा होगा। आज मैं तुझे विदा करती हुई रो रही हूँ; पर यदि तू मुझे जीवन-भर सदा हँसती हुई देखना चाहती है तो अपने स्वामी, सास और ससुर आदि सभी परिवारवालोंकी यथोचित सेवा, भक्ति, विनय, नम्रता, मृदुता और कुशलतासे अपने प्रेमकी डोरीमें बाँध लेना। बस, इसीसे मैं सदाके लिये सुखी हो जाऊँगी।"

इसके बाद वर-वधू दोनों अपने घर आये। विजयाकुमारने देखा कि उसकी संसारयात्राकी संगिनी, ध्रुवकी तरह अचल और पुनीत आर्य-विवाहकी सुवर्ण ग्रन्थिसे बँधे हुए दाम्पत्य-प्रेमका लाभ लेनेके लिये उसके महलको प्रकाशित कर रही है।

सास, नन्द आदि घरकी स्त्रियाँ नयी बहूको मानों हाथों हाथ लिये फिरती हैं। विजया माँ-बाप, भाई-बहन और सहेलियोंका प्यार भूलकर आज इस नयी दुनियाके लोगोंकी पवित्र प्रेम-सुधा-का पान करनेके लिये उत्कण्ठित हो रही है।

---
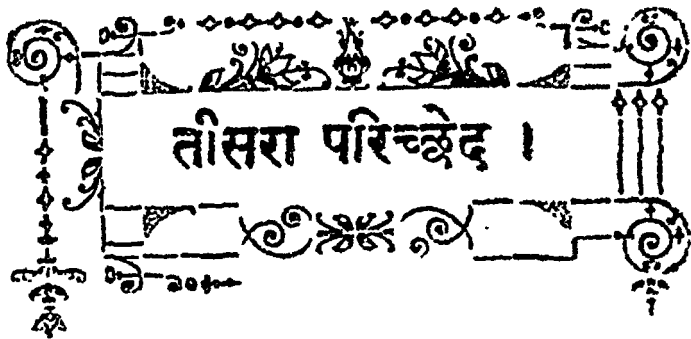
## विचित्र दम्पती।

नये जीवनका पहला दिन है। आजका यह प्रथम प्रभात कैसी मंगलमयी किरणोंसे जगमगा रहा है। छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ अपनी इस नई भाभीको देखनेके लिये दौड़ते हुए चले आ रहे हैं और उसे हँसानेकी चेष्टा कर रहे हैं। पर भाभी बड़ी गम्भीर है—वह सबकी बातोंके जवाबमें धीरेसे मुस्करा देती है। कभी कभी तो अपने देवर या ननदके सिरपर केवल हाथ फेरकर ही रह जाती है। धीरे धीरे वधूने बच्चोंको अपने वात्सल्यसे, बड़ोंको श्रद्धा भक्तिसे और बराबरवालोंको अपने स्वार्थ त्यागसे खुश करना शुरू कर दिया। लोग उसे देख देखकर मन ही मन कहने लगे,—"यह कोई गृहस्थ रमणी है या वन-वासिनी परिव्राजिका?"

इस कमसिनीमेंही उसमें जो प्रौढ़ता, हृदयकी भावपूर्णता, और उज्ज्वलता थी, जीवनके प्रत्येक अङ्गमें प्रेम और सौन्दर्यका जैसा सोता बह रहा था, उसे देखकर सास तो अचरजमें डूब

गयी। ससुरके हृदयमें एक नई लहर पैदा हो गयी। इसकी जिह्वासे मानों फूल झड़ते थे, मानों बात-में वह अमृतकी बूँदें टपकती थीं, जिनसे प्रत्येक मनुष्यका हृदय शीतल हो जाता था।

माता-पिताके लाड़-प्यारको भूलकर आज यह नववधू प्रेमका प्रथम पाठ सीखने चली है। नये वस्त्रोंसे अपने अंगको छिपाये वह घूँघटकीही ओटमें नन्हें-नन्हें बच्चोंसे भी बातें करती है—मानों लज्जाकी जीती जागती मूर्त्ति है।

स्नानादि हुए—भोजन हुए—दिन बीता—सन्ध्या हुई। शामको पड़ोसकी बहुतसी स्त्रियाँ नयी दुलहियाको देखने आयीं। सब बहूके रूप-गुणका बखान करने लगीं।

इतनेही थोड़े समयमें वधूने सबके मन मोह लिये। सच है, आतेही बहूके लक्षण मालूम पड़ जाते हैं और गद्दीपर बैठतेही राजाकी नीति प्रकट हो जाती है। विजयाने एकही दिनमें अपनेको ऐसा बना लिया कि वह अपने सास ससुरको माँ-बाप और ननद-देवरको भाई बहन मानने लगी और उनपर पूरा स्नेह प्रकट करने लगी।

रात हुई। स्वामीसे मिलनेके लिये हृदयमें नाना प्रकारकी भावनाएँ लहरें मारने लगीं। वह धीरे धीरे शयन मन्दिरमें आयी।

सच पूछो तो मनुष्य प्रकृतिकी सर्वोत्तम रचना है। इसके दो अङ्ग हैं—नर और नारी। यदि इनमें पूरा मेल हुआ तब तो प्रकृतिकी रचना खरी निकली और नहीं तो बेढङ्गी हो गयी।

धीरे धीरे डेढ़ पहरकी रात बीत गयी। सारा संसार सन्नाटेकी गोदमें पड़ा है—चारों ओर शान्ति फैली हुई है। विजयाके लिये जो कमरा नियत था, उसमें वह एक चढ़ेही सुन्दर पलँगपर बिछे हुए मुलायम बिछौनेके ऊपर मेंहदीसे रचाये हुए हाथकी हथेली पर अपना कोमल कपोल रखे न जाने क्या सोच रही है। उसके सुन्दरतासे भरे हुए मनोहर मुखड़े पर हलकीसी मुस्कराहट है और शान्ति उसके अँग-अँगसे टपकी पड़ती है। यौवनके प्रभावसे उसके हरएक अँगसे कमनीय कान्ति फूट निकली है। हाँ, नये स्थानमें आ पहुचनेके कारण स्वाभाविक लज्जासे भी उसका हृदय भरा हुआ है।

बहुत रात बीत गयी, तो भी कुमार नहीं आया। कुमारीकी आँखें राह देखते-देखते पथरा गयीं। नींद आने लगी; पर प्रिय-चिन्ताको हृदयमें आसन जमाये देख, वह आ-आकर लौट जाने लगी। घड़ी देर बाद उसे किसीके पैरकी आहट मिली। आनन्दसे उसका चेहरा खिल उठा—उसके शरीरमें मानो नये प्राण आ गये। मानों उसमें नवीन चेतना आ गयी। जैसे सूर्यका उदय होनेसे कमलके फूल खिल जाते हैं, वैसेही उसके दिलकी कली खिल गयी। पतिदेवके पवित्र चरणोंके दर्शन कर वह कृतार्थ हो गयी। प्रथम मिलनके सुखकी कल्पनासेही उसके रोम-रोममें पुलकावली छा गयी। सच है, इस स्वप्नमें अकल्पित आनन्दकी तरंगें उठती रहती हैं।

आनेवाला और भी पास आ गया। विजयाने देखा, कि

उसके विशाल भालपर स्फटिककीसी निर्मलता है, आंखोंसे मानों स्नेहकी धारासी प्रवाहित हो रही है। पतिदेवके इस मधुमय दर्शनने वधूके हृदयको एकबार ही चञ्चल कर दिया। वह बड़ी आशासे उनकी ओर देखती हुई पलँगसे नीचे उतर पड़ी।

इधर विजयकुमारने सोचा, इस अपरिचित रमणीके साथ किस तरह बातें करूँ? सोचते सोचते उसके चेहरे पर हलकीसी मुस्कराहट छा गयी। यह देख, वह बाला और भी लज्जासे सिमट गयी। दोनों ओर लज्जा, शील और सङ्कोचने अड्डा जमा रखा है। दोनों यही सोच रहे हैं कि पहले कौन बोले! हृदयमें भाव उठते हैं, पर मुँहसे भाषा नहीं निकलती।

अन्तमें विजयकुमार अपनी जीवन संगिनीके पास आकर खड़ा हुआ। बड़ी हिम्मत करके उसने पूछा,—"देवी! इस तरह सकुचाती क्यों हो? बोलो, तबियत तो ठीक है? भला इस वसन्ती प्रभातमें कोयलकी चुप्पी क्या अच्छी लगती है।?"

लज्जाके मारे विजयाके मुँहसे एक बात भी नहीं निकली. बड़ी देर तक वह यही सोचती रही कि क्या कहूँ? अन्तमें जब विजयकुमारने फिर वही बात कही, तब उसने सकुचाते सकुचाते कहा,—"प्रभो! आप अच्छे हैं, तो मैं भी अच्छीही हूँ।" कहती हुई वह फिर सकुचा गयी।

विजयकुमारने कहा,—"देवी! तुम तो जानती ही हो कि आजसे हमारा नवीन जीवन आरम्भ हुआ है। अब तो सम्पद्-विपद् दोनोंको हमें एक साथही भुगतना होगा। सुखमें साथही

हँसना और दुःखमें एक संग रोना पड़ेगा।"

विजयाने कहा,—"प्राणनाथ! इसमें कहनेकी क्या बात है! यह तो दम्पतीका धर्मही है। जहाँ अन्योन्य विशुद्ध प्रेम होता है, जहाँ एक दूसरेके प्रति स्नेहकी अजस्र धारा बह रही हो, जहाँ एकके विना दूसरेका घड़ीभर जीना मुहाल हो, वहाँ तो यह होना असम्भव ही है कि एक तो काँटोंकी सेज पर सोये और दूसरा फूलोंकी सेजपर। मेरा सुख आपके सुखमेंही है। आपके दुखी होनेके पहलेही मेरा मर जानाही मङ्गलकर है।"

विजयकुमारने मुस्कराते हुए कहा,—"वाह देवी! यह तो तुमने पूरा धर्मशास्त्रही सुना दिया।" यह कह उसने कुमारीके कन्धे पर हाथ रख दिया।

विजया बोली,—"आप यह कैसी बात कर रहे हैं?"

विजयकुमार,—"क्यों? मैंने क्या कहा, जिससे तुम इतने अचम्भेमें आ गयीं?"

विजया,—"आपने मुझे देवी कहकर क्यों पुकारा?"

कुमार,—"इसमें बुराई ही क्या है?"

विजया,—"नहीं, मुझे दासी कहकर पुकारिये।" यह कहते हुए उसने अपनी गरदन झुका ली।

कुमार,—"देवी! तुम यह क्या कह रही हो? देवके साथ देवीकाही मेल मिलता है। जो पुरुष आप देव कहलानेकी इच्छा रखता है, उसे अपनी स्त्रीको देवीही कहना चाहिये। यह प्रेम-पुराणकी परिपाटी है। अब कहो, तुम किस विचारमें पड़ गयीं?

विजया,—"देव! विचार कैसा? आज तो मैं कृतार्थ हो गयी। पहलेही भेंटमें देवीकी पदवी पा गयी। आज हमारे कौमारोत्सवका दिन बड़ेही सुखका है।"

"कौमारोत्सव" का शब्द सुनकर कुमारको कुछ आश्चर्य हुआ; पर उसने अपना यह भाव मनका मनमेंहीं छिपा रक्खा।

दोनों कौमारावस्थाको पारकर भरी जवानीमें पैर रख चुके थे; तो भी संयमकी मजबूत डोरीसे दोनोंही अपने दिलको बाँधे हुए थे। दूसरे दम्पती होते, तो इस युवाकालकी अनोखी अवस्थाको पाकर परिचयके बादकी यह पहिली रात्रि किस तरहके विचारोंमें बिता देते, यह कहनाही व्यर्थ है। वे अपनी देहकी ओर न देखकर आत्माकेही ध्यानमें लीन थे। आज इस नवीन दम्पतीमें एक अभिनव प्रकारका युद्ध छिड़ने वाला है।

विजयकुमारने पूछा,—"प्रिये! यह तो कहो, तुम अपने जीवनकी सबसे प्यारी वस्तु किसे समझती हो?"

विजयाने कहा,—"नारीके लिये पतिव्रतसे बढ़कर और क्या हो सकता है?"

इसी प्रकार बातें करते हुए रातके दो बज गये। गृहस्थ-धर्मके उज्ज्वल कर्त्तव्य, आत्माके साथ देहके सम्बन्ध, शरीरके सच्चे शृङ्गार और मानव-जीवनकी भव्यताके विषयमें बहुत देरतक खूब बातें होती रहीं।

विजयकुमारने कहा,—"सुशीले! मैं आज तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ; पर कहते हुए संकोच मालूम होता है।"

विजया,—"सङ्कोच कैसा? कह डालिये। आज नहीं तो कल तो आपको कहनाही पड़ेगा; फिर बात छेड़कर चुप क्यों रहियेगा? आपसमें छिपाव कैसा?"

विजयकुमार,—"अच्छा, तो देवी! सुनों। तुम जैन हो। मैं भी जैन हूँ, इसीसे मुझे आजही इस विषयकी चर्चा छेड़ते हुए कुछ कष्ट नहीं होता। देखो, इस संसारमें शान्ति बड़ी मुश्किल से मिलती है—क्योंकि यहाँ मोह मायाके बड़े बड़े काँटेदार पेड़ खड़े हैं—इन काँटोंमें भला चन्दन कहाँसे मिले? अपने जीवनमें दैवी और आसुरी दोनोंही तत्व भरे हैं, जो एक साथ दूध मिश्रीके तरह घुले मिले हुए हैं। एक ओर मन शरीर पर और दूसरी ओर शरीर मनपर राज्य करनेकी चेष्टा कर रहा है। यह द्वन्द्व युद्ध दिन रात जारी रहता है। इस युद्धमें यदि अपना मन संयमी हुआ तो दैवी तत्व आसुरी तत्व पर विजय प्राप्त करता है और और तभी संसारमें विजय मिलती है। निर्बल मानवके मनो-विकार जीवनके उच्च तत्वोंको दबाये बैठे रहते हैं। उच्च आत्माएँ अपने तेजस्वी और वीर्यवान् तत्वोंको स्फुरित कर अधम वास-नाओं पर अपना साम्राज्य विस्तार कर लेती हैं।"

यह कह, विजयकुमार थोड़ी देर चुप हो रहा। इसके बाद पूछा,—"क्यों? कुछ समझमें आता है?"

विजया,—भला अमृतकी भी बात पूछी जाती है? यह तो अपना स्वाद आपही बतला देता है। आप आगे जो कुछ कहना चाहते हों, वह कहिये। जहाँ मेरी समझमें नहीं आयेगा, वहाँ मैं

स्वयं पूँछ लूँगी।"

विजयकुमार,—"देखो, इस मानव जीवन रूपी भूमिमें दो विरोधी तत्त्व संयम और भोग विलास फले फूले हुए हैं। स्थिति, संयोग और निमित्तके अनुसार ये जीवनको बदलते रहते हैं। अपनेको उत्तम बनानेकी आशा हर एक मनुष्यको रखनी चाहिये और इसके लिये उसे महत् साधोंनका उपयोग करना जरूरी है। ढीले और कमजोर हथियारोंसे काम नहीं चलने का। आत्म-साधनके लिये तो बड़े ही ठोस और वज्रकीसी चोट करनेवाले हथियारों की दरकार है।"

विजया,—"ये साधन कौन कौनसे हैं?"

विजयकुमार,—"खूब मन लगाकर सुनो। आत्म जीवनको सर्वोत्तम बनानेके लिये अपने मनके कुल विकारों, वासनाओं और भोगलालसाओंको काबूमें कर लेनेकी जरूरत है। बस यही सच्चा जीवन और सच्चा ज्ञान है। इस ज्ञानके मार्गसे चलनेके लिये यह सदा याद रखना चाहिये कि इन्द्रियोंके विषयोंमें मन लगानेसे यह रास्ता रुक जाता है। क्यों ठीक है न?"

विजया,—"बिल्कुल ठीक है। मानना, न मानना तो अपनी अपनी समझ पर मुनहसिर है; पर जो बात सत्य है, वह तो सत्यही रहेगी। इसमें विवाद कैसे हो सकता है?"

विजयकुमार,—"इस मानव जीवनका सबसे ऊँचा ध्येय ब्रह्म है। हरएक धर्म और शास्त्रका अन्तिम ध्येय ब्रह्मकी प्राप्ति ही है। परन्तु बाह्य वस्तुओंके संसर्गसे विकारोंकी तृप्तिके लिये

जो प्रोत्साहन मिलता जाता है, उससे ब्रह्मका सिंहासन डगमग होने लगता है--फिर उसपर बैठनेका हमें अधिकार नहीं रह जाता। इसलिये अपने व्यक्तित्वको विशुद्ध, पवित्र संयमी और स्वार्पण भावनासे युक्त बनानेकी अभिलाषा होनी चाहिये। इसीसे मैंने एक दिन एक बड़ा भारी व्रत ले लिया।"

विजयाने उत्सुकताके साथ पूछा,—"देव! आपने कौनसा व्रत लिया है?"

विजय कुमारने कहा,—"मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि शुक्ल पक्षमें सदैव मन, वचन और कायासे ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। अब इस पक्षमें केवल पाँच दिन बाकी हैं। मेरा विचार है कि इस व्रतसे जीवनके अधम तत्वोंका नाश होना और आत्मिक स्वराज्य प्राप्त होगा।"

यह कह विजयकुमार अपनी पत्नीके चेहरेकी ओर देखता रहा। उसने सोचा था कि यह बात सुनकर विजया कुछ उदास होगी; पर उसकी धारणा गलत साबित हुई। वास्तवमें यह जोड़ी बड़ीही विलक्षण थी? इधर वह भी ऐसीही एक प्रतिज्ञा किये बैठी थी। वह बोली,—"देव! आपके इस आत्मिक युद्धमें मैं आपकी सहायिका हूँगी। आपकी कसर मैं पूरी करूँगी।"

विजयकुमार,—"देवी! तुम यह क्या कह रही हो, कुछ समझमें नहीं आता।"

विजया,—"इसमें समझनेकी क्या बात है। यह तो बिलकुलही साफ बात है।"

विजयकुमार,—"देवी ! मैं सचमुच नहीं समझा । मैं अब तक यही समझा था कि बुद्धिवलमें स्त्रियाँ पुरुषोंसे हीन हैं—वे पुरुषोंसे चतुराईमें कम होती हैं; पर आज समझा कि यह पुरुषोंकी अपनी कल्पना मात्र है। देवी ! तुम कैसी सहायता दोगी, सो साफ़ साफ़ समझाकर कहो ।"

विजया,—"देव ! आपकी प्रतिज्ञामें जो कसर थी, वह मेरी प्रतिज्ञाने पूरी कर दी है ।"

विजयकुमार,—"तुमने कौनसी प्रतिज्ञा की है ?"

विजया,—"देव ! आपने शुक्लपक्षकी प्रतिज्ञा की है और मैंने कृष्णपक्षमें ब्रह्मचर्य पालन करनेकी प्रतिज्ञा की है ।

विजयकुमार,—"ऐं । क्या तुम सच कह रही हो ?"

विजया,—"नाथ ! तो क्या मैं आपसे झूँठ कह रही हूँ—पतिसे भी वञ्चना की जाती है ?"

विजयकुमार,—"शायद तुम दिल्लगी कर रही हो ।"

विजया,—"नहीं, नहीं, प्राणनाथ ! मैं विलकुल सच कह रही हूँ । मुझे इस बातका हर्ष है । जब तक जोड़ी एकसी नहीं होती तबतक जीवन सुखी नहीं होता । आप घबरायें नहीं । देहके शृंगारके तो बहुतसे साधन हैं; पर आत्माके शृंगारके साधन किसी भाग्यवान्कोही नसीब हो सकते हैं । स्थूल लक्ष्मीके स्वामी होनेकी अपेक्षा सूक्ष्म लक्ष्मीका पिता बनना, इसी व्रतके पालनेवालोंके भाग्यमें रहता है ।"

विजयकुमार,—"परन्तु———"

विजया,—"किन्तु क्या? आपको चिन्ता करनेका तो कोई प्रयोजन नहीं है। आजसे हमलोग सदा ब्रह्मचर्य पालन करते हुए रहेंगे; पर कृपाकर आप मेरी एक विनती स्वीकार कर लें।"

विजयकुमार,—"कहो, क्या कहती हो?"

विजया,—"आपने कृष्णपक्षमें ब्रह्मचर्य पालन करनेका नियम लिया है, इसलिये शुक्ल-पक्षमें सांसारिक सुख भोगनेके लिये एक दूसरी स्त्रीसे विवाह कर लें।"

विजयकुमार,—"यह तुम कैसी बात कह रही हो? भला आत्म प्रेममें कभी विभाग हो सकता है? मालूम होता है कि तुम मेरी थाह ले रही हो। विषय वासनाकी तृप्तिके लिये मैं दूसरी स्त्रीसे विवाह क्यों करूँ? अपने जीवनकी सारी उच्च भावनाओंको भोग लालसाकी आगमें डाल दूँ? वाह! यह तो तुमने खूब अच्छी विनती की। अजी, जैसे पतिव्रताको एकही पति होता है, वैसेही पुरुषोंको भी एक पत्नीव्रत होना चाहिये। इन्द्रिय दमनमें मुझे कच्चा क्यों समझती हो? बस आजसे फिर कभी ऐसी बात न कहना।"

कुमारकी इन बातोंसे उसका आत्म गौरव भली भाँति प्रकट हो रहा था और उसकी आँखें बतला रही थीं; कि अपनी प्रियाकी बातें सुनकर वह आश्चर्यमें पड़ गया था।

सौभाग्यवती विजयाने कहा,—"स्वामी! मैं आपका मतलब भली भाँति समझ रही हूँ। संसारमें ऐसी कितनीही बातें हैं, जिनसे आपको कालान्तरमें कुछ कष्टका अनुभव हो सकता

है, इसीसे मैं वैसा कह रही हूँ। मेरे लिये आप तनिक चिन्ता न करें। मैं तो शोक, दुःख और कष्टको कोई चीज नहीं समझती। संसारमें पुत्रकी कामना भला किसे नहीं होती? गृहस्थको पुत्रकी आवश्यकता भी तो होती है?"

विजयकुमार,—"यह बात मेरी समझमें नहीं आती। क्या आत्मवादकी बात करनेवाले जैनके लिये पुत्रकी कामनाके पीछे अपने व्रतका विसर्जन करना चाहिये? गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमोंका विश्राम स्थान है। यह सन्यास अवस्थाकी पहली सीढ़ी है। जब तुम सारा जीवन विषय वासनासे दूर रहकर बिताओगी तब मैं क्यों उसके फेरमें पड़ूँ। यह तो सहचार धर्मके विरुद्ध है। तुम्हीं न्यायासन पर बैठकर कहो, क्या मुझे उस नाम मात्रके सुखके पीछे दौड़ना चाहिये? हमारे शास्त्र क्या इसे उचित कहते हैं?" कहते कहते कुमारने अजीब गम्भीर मुद्रा धारण कर ली।

विजया,—"मुझे न्याय अन्यायका फैसला करनेका क्या अधिकार है? शास्त्र तो स्त्रीके लिये एकही पतिका विधान बतलाते हैं; परन्तु पुरुषोंके लिये ऐसा कोई नियम नहीं है। इसी लिये मैं कहती हूँ कि आप सुखसे जीवन बितायें, यही मेरी एक मात्र अभिलाषा है। आप अवश्य दूसरी स्त्रीसे विवाह कर लें।" कहते कहते विजयाने घूँघट काढ़ लिया।

विजयकुमार,—"पुरुषोंनेही तो अपने स्वार्थके लिये शास्त्रोंमें ऐसा विधान कर रखा है। वे आप तो मौजसे रहना चाहते हैं

और स्त्रीके लिये कुछ चिन्ता नहीं करना चाहते । शृंगारकी सड़क पर खड़े होकर वैराग्यकी बात बघारने वाले ओछे पुरुषोंने शास्त्रोंके ऐसे अनोखे ढंगके अर्थ निकाले हैं । मुझे इन स्वार्थी बातोंसे कोई मतलब नहीं है । तुम मुझे इनके पञ्जेमें न डालो ।"

विजया,—"प्रभो ! आपके न्याय, तर्क और युक्तिके सामने तो मुझे हार माननीही पड़ती है । मेरा जीवन तो आपके जीवनके साथ मिलकर एक हो गया है । अब आप चाहें जिस रास्तेसे मुझे ले चलें, मुझे और कुछ नहीं कहना है । शासनदेव आपको अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये चेतन, उत्साह और अमर भावनाएँ प्रदान करें, यही मेरी इच्छा है ।" यह कह वह चुप हो रही ।

बातोंही बातोंमें दो पहर रातके बीत गये—तीसरा पहर आ पहुँचा । दोनों विवाहित दम्पती ब्रह्मचारीकी भाँति अलग अलग बिछौनों पर सो रहे । चाँदनी रात, सन्नाटेका समय, एकान्त शयन मन्दिर, यह सब सामग्री तो किसी भी विलासी पुरुष या स्त्रीके मनको चञ्चल करने और उसमें विकारकी आँधी चला देनेके लिये काफ़ी थी । वासनाओंकी यातनासे कोई बिरलाही भाग्यवान् मुक्त होता होगा । जगत्में ऐसे विकट ब्रह्मचर्य और अनुपम पुरुषार्थका उदाहरण भला कहाँ देखनेमें आता है ?

प्रतिदिन दोनों दम्पती कभी अलग और कभी पास पास एकही शय्या पर सो रहते—बीचमें नंगी तलवार पड़ी रहती थी—मानों उसके दोनों ओर दो कठ-पुतलियाँ सोयी हुई हों इसीका

नाम कला-अनुपम कला हैं। राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध आदि शत्रुओंसे घिरे हुए इस जीवनमें सत्य और ज्ञानकी कुञ्जी छिपी हुई है। उसका पता किसी विरलेही भाग्यवानको लगता है। अन्तिम संयम और उसको निवाहनेकी कलाही सच्चा जीवन है। जो उस कलाको जानता है और उसका ठीक ठीक उपयोग करता है, उसके लिये वह अमृतका काम देती है। कला विहीन जीवन तो मृत्युसे भी बुरा है।

---

# चौथा परिच्छेद।

## वैराग्यका स्वरूप।

एक दिन मनोहर रात्रिके समय दोनों स्त्री-पुरुष अपने महलकी अटारी पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। दोनों-के मुखपर विलक्षण तेज प्रकट हो रहा था। उनकी अखण्ड ब्रह्मचर्यसे भरी जीवन- ज्योति कितनोंके जीवनान्धकार को दूर कर रही थी--कितनेही विलासियोंको लज्जित कर रही थी। मोहजालमें पड़ी हुई आत्माओंको जीवनके सच्चे तत्वका पता बता रही थी।

विजयकुमारने बगलमें बैठी हुई विजयासे कहा,—"आज मुझे तुमसे एक बड़ी जरूरी बात कहनी है। देखो, अपने इस व्रतकी बात मेरे पिता-माताको मालूम न होने पाये, इस बातका पूरा ध्यान रखना।"

विजयाने पूछा,—"क्यों? इसका कारण क्या है?"

विजयकुमार,—"शायद इसे सुनकर उन्हें दुःख हो।"

विजया,—"आपके छिपाये यह भेद कबतक छिपेगा?"

विजयकुमार,—"यों भलेही खुल जाये; पर अपनेको तो छिपानेकीही कोशिश करनी होगी।"

विजया,—"पर यदि इन्हें इसका पता चल जाये तो?"

विजयकुमार,—"तब हम लोग दीक्षा लेलेंगे।"

यही सलाह पक्की रही और दोनों स्त्री-पुरुष अपनी जीवन नौकाको एकही साथ संसार सागरमें खेले चले। उनके आदर्शकी उज्ज्वल ज्योति उषःकालके आकाशकी प्रभाको मलिन करती, रविकी तेजस्वी किरणोंको लज्जित करती, गौरवके साथ चमकती रही। उनके ब्रह्मचर्यका तेज दिन दिन उज्ज्वल होता चला गया। उनकी बात बातमें मानों स्वर्गीय अमृत भरा रहता था। अखण्ड ब्रह्मचर्यको ही उन्होंने अपने जीवनका ध्येय बना लिया था। सच पूछो तो विशुद्ध ब्रह्मचर्यका आनन्द जो जानता है, वही जानता है। घने जंगलमें भटकते हुए मुसाफिरकी तरह जीवनकी झूठी आशाओंके पीछे दौड़ने वाले पामर प्रवासीको इस ब्रह्म प्रवासके ध्येयकी क्या परख हो सकती है? इन दोनों प्राणियोंने अपने जीवनसेही शास्त्रका यह वचन सिद्ध कर दिखाया कि दृढ़ ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला मनुष्य गृहस्थोंसे कहीं उच्च है। ब्रह्मचर्य मानव जीवनका सर्वोच्च पाया है। आत्मिक उन्नतिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको यही दशा पसन्द पड़ती है। वह अपनेको इसीके योग्य बनानेकी चेष्टा करता है और इसे निभानेका प्रयत्न करता है। यदि स्त्री और पुरुष चाहें तो दोनोंही मिलकर इस स्थितिको उत्पन्न कर सकते हैं।

दिन पर दिन और साल पर साल बीतते चले गये। दिन-दिन इस युगल जोड़ीकी आत्माएँ जीवन-ज्योतिके नये-नये

प्रकाशसे उज्ज्वल होती चली गयीं। अपने परम उज्ज्वल प्रकाशसे वे दोनों स्त्री-पुरुष इस अज्ञानान्धकारसे भरे हुए संसारमें प्रकाश फैलाने लगे। उन्हें संसारकी वाह-वाही या मानापमानकी कोई चिन्ता नहीं थी—वे अपने आदर्शकाही पालन करनेमें आत्मिक सुख अनुभव कर रहे थे। वे विलासके स्थानमें वैराग्य और बुद्धि-वादके स्थानमें आत्मवादको माननेवाले थे। अब संसारही इस बातका विचार कर देखे कि अत्मवादके सामने बुद्धिवादकी क्या हकीकत है?

इन्हीं दिनों वहुत दूर चम्पा-नगरीमें केवली भगवानके पधार-नेके उपलक्षमें देवताओंने सिंहासनकी रचना कर रखी थी। आस-पास कमल और अन्यान्य फूलोंकी सुगन्धिसे सारा प्रदेश आमोदित हो रहा था। उस स्थानकी मोहकता अवर्णनीय हो गयी थी। अहा! क्याही सुन्दरता थी! कैसी शोभा थी! इस विशाल संसारको धर्म और कर्त्तव्यका ज्ञान करानेवाले केवली भगवानके लिये रची हुई शोभाओंका वर्णन भला कोई किस मुँह-से कर सकता है?

इन दोनों दम्पतीने जो अखण्ड-ब्रह्मचर्य और उत्कट वैराग्य धारण किया था, उसके प्रतापसे ये चाँद-सूरज बने हुए संसारमें फिर रहे थे। पृथ्वी पर ऐसे अखण्ड व्रतधारी विरलेही जन्म लेते हैं। यह मार्ग बड़ाही विकट है। पग-पगपर भय, शङ्का और सन्देहकी जगह है। इतने भय और बाधाओंसे भरे हुए रास्तेमें जो निर्भय होकर विचरण करता और पूर्ण रूपसे इन्द्रिय-निग्रह

कर सकता है, वह निश्चयही वीरात्मा है। ज्यों-ज्यों ब्रह्मचर्यके व्रतमें निश्चयता-आती जाती है, त्यों-त्यों उनकी आत्माएँ दैवी प्रासादकी ऊँची अँटारी पर चढ़ने लगती हैं। इतने ऊँचे चढ़ने-वाले जगत्में सबसे बड़े संन्यासी गिने जाने योग्य हैं और लँगोटी पहनकर, भस्म लगाकर अलख जगानेवाले योगी नामधारियोंसे कहीं बढ़े-चढ़े हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। एकही इन्द्रियके निग्रहसे पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह हो जाता है। क्योंकि सबसे मुश्किल काम मनको काबूमें करनाही है। काजलकी कोठरीमें पहुंचकर भी जिनके काजरकी रेख नहीं लगती,.ये वर-वधू वैसेही थे। ये दोनों एकही पथके पथिक, एकही लक्ष्य पर निशाना बाँधनेवाले और परस्पर मिलकर वासना-रूपी दैत्यको पछाड़ने वाले थे। दैत्यको तो इन्होंने मार डाला और चारों ओर अपनी कीर्त्तिका उजेला फैला दिया—उनके चारों ओर अखण्ड दैवी प्रभा दमक रही है। वह प्रभा अनन्त ज्योतिर्मय है। उसमें कभी कम न होनेवाली कीर्त्ति है, त्यागकी सुगन्ध है, आत्मदर्शनकी छाया है। दोनोंही जवान हैं, दोनोंही परम सुन्दर हैं। ऐसी अवस्थामें इन दोनोंका साथ होने पर तो इनपर काम और मदका प्रभाव होना चाहिये था। परन्तु बात उल्टीही हुई। इनके लिये तो घरही योगीका आश्रम बन गया। योगिराज और योगिनीका अचल संयम संसारकी एक अद्भुत सामग्री थी। इसमें सन्देह नहीं कि जो व्यक्ति संसारके सिरमौर बन जाते हैं, वे साधुओंसे भी महासाधु हैं। भला इस जगतके कामियोंके बीचमें रहने हुए भी

जिसकी आत्मापर काम और वासनाका प्रभाव न पड़े, उसे साधु नहीं तो और क्या कहेंगे? उसकी आत्मा पर मानों यही बातें अमिट अक्षरोंमें लिखी रहती हैं कि ब्रह्मचर्यही जीवनकी सबसे बड़ी साधना है, सौन्दर्यकी शोभा शीलसे ही है और यौवनकी श्री संयमसेही विकसित होती है। कफ़नी और विभूति तो समय पर ही सोहती है; पर यह तो बाल संन्यासियोंका बाल्ययोग है। ये आत्मा और परमात्माका योग सम्पादन करनेके लिये जीवन-की फुलवाड़ीमें पुण्यका बीज बो रहे हैं। जो जैसा बोता है, वैसाही पाता है। जिसे सुगन्धकी इच्छा है, वह तो ब्रह्मचर्यके सुगन्धि कुसुमका ही पेड़ बोयेगा। यह एकको दूसरेके द्वारा विजयका मुकुट पहनाता है और उन्हें अपने निश्चयकी ओर आगे बढ़ाता चला जाता है। पूर्व भवमें किये हुए अच्छे कर्म ब्रह्मचर्यके द्वारा अच्छा फल ले आते हैं और आस-पास अमृतकी वर्षा करते हैं। विषयमें विषकी भावना करने वाले सच्चे प्रेमी ऐसाही करते हैं और जहाँ शुद्ध प्रेम होता है, वहाँ देहके सुखकी वासना फटकने नहीं पाती।

पाठक-पाठिकाओ! आप लोगोंने पुस्तकोंमें पढ़ा होगा कि मानव-जीवनका साध्य या लक्ष्य ब्रह्म है। यह मन कभी-कभी ब्रह्मके दर्शनोंके लिये तड़प जाया करता है। निष्ठा-पूर्वक ब्रह्म-चर्यका पालन करना ब्रह्म-दर्शनकी पहिली सीढ़ी है। ऐसा करने वालोंके पग-पगपर साधुताकी झलक नज़र आती है और वे सं-सारमें स्वर्गका नन्दन-वन उतार लाते हैं। यदि विचरण करना

है, तो ब्रह्मचर्यकी आँचमें अपनी आत्मारूपी काञ्चनको तपाकर शुद्ध बनाओ और जीवन कुञ्जमें परम आनन्दके साथ विचरण करो। परन्तु साथही यह भी याद रखिये कि यह व्रत सबके मानकी बात नहीं है। परम जितेन्द्रिय, आत्म विजयी और विपुल वैराग्यवाले साधु हृदयही निष्ठा-पूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं। वासनाके दैत्योंको मार गिरानेके लिये पहले अपनी आत्मशुद्धि करनी पड़ती है। फिर तो उसे संसारकी ऊँची ऊँची लहरें घबड़ाहटमें नहीं डाल सकतीं और रुकावटें उसकी राहमें रोढ़े नहीं डालतीं। परन्तु उसे हर समय अपने पास वज्रकी ढालकी तरह ब्रह्मचर्यकी ढाल अपने पास रखनी पड़ती है। ऐसा भाव रखने वाले ब्रह्मचारीको न तो विघ्न-बाधाओंसे घबड़ाहट होती है, न उसे वासनाएँ व्रतसे विचलित कर सकती हैं। वह मृत्युसे भय नहीं करता—मृत्युसे केवल उसकी देहका नाता है। ऐसे पुण्यवानोंको बार बार प्रणाम है। अस्तु।

झुण्डके झुण्ड लोग केवली भगवान्‌की मधुर देशना सुननेके लिये आने लगे और सुनकर प्रसन्न होने लगे। एक दिनकी बात है कि बहुतसे श्रोताओंके साथ एक जिनदास नामका सेठ भी वहाँ आ पहुंचा। इसी समय केवलीने अपनी देशना इस प्रकार आरम्भ की,—

“हे भव्य आत्माओ! मानुषी जीवनमें उच्चतम अङ्ककी तरह धर्मका—आत्माका—स्वरूप चार प्रकरणोंमें समाया हुआ है। आत्मिक-बलके विकाशके लिये चार मुख्य क्रियाएँ अपने जीवनमें

ओत-प्रोत भरी हैं। अपने जैसे कुछ विचार, इच्छा, गुण और भावनाएँ होती हैं, अपने जीवनका वैसाही स्वरूप बन जाता है। इस लिये हमें सदैव ऊँचे विचार, इच्छा, गुण और भावनाके उत्पादक नियमित दान, शील, तप और भावनाकी आराधना करनी चाहिये। इन सबमें दानको—अर्थात् सुपात्रको किये हुए दानको मोक्ष-सुख यानी मुक्तिका प्रथम और प्रबल साधन माना गया है। यदि मनुष्यका कोई सबसे अच्छा लक्षण हो सकता है अथवा धर्मका पहला मूल सिद्धान्त कहा जा सकता है, तो वह दानही है। इस भूमिपर आतेही माँकी गोदमें खेलनेवाले प्रत्येक मनुष्यको सहायता यानी दया-दानकी आवश्यकता होती है। प्रकृति हवा-पानी देती है तो माता अपनी छातीका दूध पिलाती है, पिता पालन-पोषण करता है, आत्मीय-स्वजन तरह तरहकी शिक्षाएँ देते हैं और समय पड़ने पर यथाशक्ति पूरी सहायता करते हैं। हम जीवनके प्रथम प्रभातमें जिस तत्वको दूसरोंसे ग्रहण करना चाहते हैं, उसे यदि हम भी औरोंको न दें तो मानव-जीवनमें निर्मलता, विशालता तेजस्विता और मधुरता आ ही नहीं सकती। हम जिसे पाकर जीते हैं, उसे दूसरोंके जीवनके लिये देना हमारा भी परम कर्त्तव्य है। जहाँ व्यवहारमें दान करनेकी सहृदयता नहीं है, आर्द्रता नहीं है, हृदयकी उदारता नहीं है, वहाँ तो धर्मका लेशमात्र भी नहीं रह सकता। जो मनुष्य अपनी उदारताके वशमें होकर खुले दिलसे अपने धनको सुपात्रको दान देनेमें खर्च कर डालता है, उसे लोग तो पागल ही कहते हैं; पर नहीं, वह

असलमें बहुत बड़ा महात्मा है। महान् दानव्रतके आगे और किसकी महिमा है? जो गिन-गिनकर दान करता है, उसका हृदय बहुतही सङ्कुचित समझना चाहिये। दान करते समय तो हृदयमें उल्लास और उमङ्गही होनी चाहिये। दाताको चाहिये कि वह निर्भय रहे और भविष्यके लिये शान्तिका अनुभव करता रहे। दानका अर्थ केवल देनाही है—देना भी इस दर्जे तक, कि लेनेवाला तो थक जाये; पर देनेवाला न थके। ऐसा कोई दानवीर तो विरलाही होगा। दान कई प्रकारका होता है। लक्ष्मीदान, वस्त्रदान, अन्नदान, विचारदान, दया-दान इत्यादि। इनमें स्वरूप भी पृथक्-पृथक् होते हैं। कंगालोंकीसी दशामें पड़े हुए जीवन-बितानेवालोंको लक्ष्मी या वस्त्रका दान करना, विचार-शून्य हृदय वालोंको विचार दान करना, दयाहीन प्राणियोंको दया-दान करना और सर्वोत्तम दान अन्नदानही माना गया है।

"यदि अन्नदान देनेवालेके परिणाम शुभ हों, तो वह मनुष्य जीवन के लिये आदर्श हो सकता है। आगे आनेवाली प्रजा उसे अपनी आत्माकी तरह मानती और पूजती है। पर यदि कहीं उसने स्वार्थ, दम्भ, और मानकी लगनके साथ यानी इन भावोंसे प्रेरित होकर दान किया हो, तो उसका किया हुआ दान बेकार चला जाता है। कारण यह है कि, इज़्ज़त-आबरू, बड़प्पन, बदले या स्पर्द्धाके लिये किया हुआ दान आत्मधर्ममें स्थान नहीं पा सकता। उससे शरीरका बाहरी आडम्बरही मालूम पड़ता है। फिर बाहरकी चीज़ यदि ऊपरही ऊपर उड़ जाये, तो इसमें अस्वा-

भाविकता ही क्या है? ऐसे दानका कोई प्रयोजन नहीं है। इसीलिये कहा गया है कि गुप्तदान अर्थात् हर्षके आवेशसे, भक्ति-भाव पूर्वक किया हुआ सुपात्रदान, जो आत्मधर्मकी खातिर किया जाता है, वही आत्माको सिद्ध-दशा तक पहुंचाने वाली बहुत बडी सीढ़ी है।"

केवली भगवान्‌की यह देशना श्रवण कर.सब श्रावक श्रोताओंके हृदयोंमें दानकी महिमा छा गयी। जिनदास सेठने हर्षके आवेगसे उछलते हुए हृदयसे केवली भगवान्‌से पूछा,—हे भगवन्! सुपात्र कौन्-कौन हैं? इनकी परख कैसे हो सकती है?"

सेठके चेहरे पर भक्ति पूरी मात्रामें झलक रही थी—मुखड़ेसे पुण्यकी प्रभा प्रकट हो रही थी। वह केवली भगवानके सामने हाथ जोड़े खड़े-खड़े अपने विभव-ऐश्वर्यको भी भूल गया था। केवलीने उसका भक्तिभाव देख बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा,—"हे भव्य! सुपात्रोंमें.तीर्थङ्कर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय और पाँच महाव्रतोंका पालन करनेमें तत्पर यति-मुनियोंकी गणना मुख्य है।"

जिनदास,—"भगवन्! आज मेरे मनमें सुपात्र दानकी बड़ी बलवती इच्छा हो रही है। मेरी यह इच्छा क्योंकर पूरी होगी? प्रभो, कृपाकर यह तो बतलाइये कि इस पृथ्वी पर कितने साधु विचरण कर रहे हैं?" यह बात कहते-कहते जिनदासको ऐसा मालूम हुआ मानों कोई गुप्त तेज चमकता हुआ पीछेसे आकर उसकी आँखोंके सामने अपनी बाँकी झाँकी दिखा गया।

केवली,—"इस समय इस क्षेत्रमें चौरासी हज़ार मुनिराज विचरण कर रहे हैं।"

जिनदास,—"प्रभो! ऐसा कोई रास्ता बतलाइये, जिससे ये सभी पावन-चरित्रवाले पुण्यात्मा साधु एक साथ मुझ ग़रीबके घर आहार ग्रहण करें।" यह कह जिनदास हाथ जोड़े हर्षकी सजीव प्रतिमा बना हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

केवली,—"एकही साथ होना तो असम्भवसा है। इतने मुनियोंका एक साथ संयोग होना तो कठिन बात है। फिर साधु लोग तो आगार-रहित निर्दोष भोजनही स्वीकार कर सकते हैं। साधुओंके लिये पहलेसेही इतनी लम्बी-चौड़ी तैयारी भी नहीं होनी चाहिये; क्योंकि इससे साधुको भी दोष लगता है।"

जिनदास,—"ओह! यह तो मेरे लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है। क्या मेरे पुण्य ऐसे प्रबल नहीं हैं कि मेरी यह इच्छा पूरी हो।"

कुछ सोचकर केवली भगवान्ने कहा,—"हे महानुभाव! तुम्हारी अपूर्व भक्ति और धर्मानुराग अवर्णनीय है। ख़ैर, एक उपाय है। उससे तुम्हारा मनोरथ—अवश्यही पूरा हो सकता है।"

जिनदासने बड़ी व्याकुलता और उत्कण्ठाके साथ कहा,—"अहा! कैसे आनन्दकी बात है! प्रभो! जल्द बतलाइये, वह उपाय कौनसा है?"

केवली,—"सुनो; तुमने सुपात्र-दान रूपी महा पुण्यकी महिमा भली भाँति समझ ली है। आज तुम्हारे मनमें इस बात-

की प्रबल इच्छा जग पड़ी है कि चौरासी हज़ार मुनियोंको एकसाथ भोजन कराऊँ। परन्तु ऐसा संयोग होना कठिन है। किन्तु तुमको तो इतने मुनिराजोंको आहार करानेका जो पुण्य है, वह अवश्यही मिलकर रहेगा। यदि तुम उस फलको प्राप्त करना चाहते हो, तो कच्छदेशमें निवास करनेवाले, अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जीवनकी ज्योति प्रकाशित करने वाले, संसारकी धधकती हुई अग्निसे घिरे हुए रहने पर भी नन्दन-वनकी शान्तिका अनुभव करने वाले विजय सेठ और विजया सेठानीको एकबार भक्ति-भावसे जिमाओ, बस तुम्हें चौरासी हज़ार साधुओंको जिमानेका पुण्य-फल प्राप्त हो जायेगा।"

यह सुनतेही जिनदासके नेत्रोंमें एक नयाही तेज भर आया। उसकी अन्तरात्मा एक अपूर्व आनन्दकी मस्तीमें झूमने लगी। उसने देखा कि इस समय मेरे जीवनका उदय होने वाला है। उसने बड़ी उत्कण्ठाके साथ केवली भगवान्से विजय सेठ और विजया सेठानीका इतिहास पूछते हुए कहा,—"हे प्रभो! पञ्चमहाव्रत धारण करनेवाले एकही सुयोग्य मुनिवरके चरणों पर जगत् भरके मनुष्य सीस झुकाते हैं; फिर ऐसे-ऐसे चौरासी हज़ार मुनियोंकी तुलनामें दोही स्त्री-पुरुष कैसे आ सकते हैं, यह मेरी समझमें नहीं आता। इस जोड़ीमें भला कौनसा ऐसा अद्भुत गुण है? उन्हें इतना महत्व कसे प्राप्त हो गया?"

केवली भगवान्ने कहा,—"हे महानुभाव! पञ्चमहाव्रतमें अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह—ये धर्मके पाँच मुख्य अङ्ग

हैं। इनमें भी ब्रह्मचर्यकी गिनती सबसे ऊपर है। इसके भंग हो जानेसे अन्य सभी व्रत भंग हो जाते हैं। उसके प्रभावसे जो तेज व्याप्त रहता है, वह नष्ट हो जाता है और केवल जड़ मात्र शेष रह जाता है। जीवनका उद्देश्य विलास-वैभवकी सामग्री इकट्ठी करके उनसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंको हृदयमें पोषण करना नहीं है; बल्कि इन्द्रियोंको संयमसे बाँध रखनाही है। अहिंसाका पालन करनेमें मृत्युसे भी न डरे, असत्यका नाश करे और संसारकी तृष्णाओंको जीत ले, यही मनुष्यका कर्त्तव्य होना चाहिये। इन पञ्चमहाव्रतोंको पहचानकर मन, वचन और शरीरसे इनको पाले वही सच्चा पञ्चमहाव्रतधारी महासाधु कहलाता है; परन्तु यह याद रखना चाहिये कि इन साधुओंको सबसे पहले ब्रह्मचर्यका तेज अर्जन करना पड़ता है। इन्द्रियोंके संयमसे उनका मन बहकने नहीं पाता और उनकी आत्मशक्ति नष्ट नहीं होती। संयमसे जो शक्ति उत्पन्न होती है, उसका प्रयोग उच्च आत्मिक उद्देशका साधन करनेमें होता है। द्रव्य और भावसे ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले इस समय संसारमें यही दोनों स्त्री-पुरुष हैं।" यह कह केवली भगवान्ने जिनदासको विजय सेठ और विजया सेठानीका परिचय दिया।

केवली की बातें सुन जिनदासने कहा,—"परन्तु प्रभो! वे तो गृहस्थ हैं। कहाँ ये संसारी और कहाँ चौरासी हज़ार साधू! आप कहते क्या हैं?"

यह सुन केवली भगवान्ने कहा,—"तुम भूलते हो। कोई

कफ़नी पहनकर भभूत लपेटकरही साधु नहीं हो जाता। साधु तो वही है, जिसके मनमें परम शान्ति हो, जिसके आदर्श खूब ऊँचे हों, जो सिवा सत्यके और कुछ न कहे, जो अहिंसाकी जीती जागती मूर्त्ति हो, जिसके कर्म उच्च कोटिके हो, जो सच्ची आत्म-शुद्धिकी साकार प्रतिभा हो, जो धर्मके नामपर ढोंग न रचता हो, स्वार्थके लिये धींगा-धींगी न करता हो, इन्द्रियोंका दास न बना हो, जिसके हृदयमें भीतरी कलहका स्पर्श भी न हो, जो क्षण-ही-क्षण आत्म-चिन्तन करता हो, जो संसारकी विषमय ज्वाला-से सदा दूर भागता हो, जो जीवनमुक्तिकोही अपना ध्येय बनाये हुए हो वही सच्चा साधु है और वही अनेक साधुओंकी बराबरी कर सकता है। संसारी होते हुए भी विजय सेठका हृदय अटल वैराग्यसे भरा है। उसके घरमें उसकी सेठानी विजया मौजूद है, तो भी उसके साथ रहकर भी, उसने जीवन भर अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया है।"

जिनदास,—"हो सकता है; परन्तु प्रभो! यह बात तो मेरे गलेके नीचे उतरतीही नहीं कि एक संसारी इतने साधुओंकी बराबरी कैसे कर सकता है।"

केवली,—"हे भव्य! वेश और हृदय—ये दो अलग-अलग चीजें हैं। केवल साधुका वेश बना लेनेसे किसीको वासनाओंसे छुटकारा नहीं मिलता। उससे तो संसारी रहते हुए गृहस्थ-धर्मका पालन करना और धर्म मार्गमें अग्रसर होते रहना, कहीं अच्छा है। संसारमें रहकर भी साधुओं जैसा पवित्र आचरण

किया जा सकता है। जिसका जीवन शान्तिका आवास है, वह गृहस्थ कहीं अच्छा है। जिस संन्यासीका मन अशान्तिका स्थान हो, उस संन्यासीका संन्यास भला किस कामका है? जगत्‌के कोलाहलसे घबराकर ही मनुष्य वैराग्यकी छायामें विश्राम करना चाहता है ; पर यदि यहाँ भी वही हाय-हाय हो, तो फिर उसके तो दोनों पक्ष बिगड़ जायेंगे। संन्यास लेनेपर भी यदि आशा-तृष्णाके झमेलेमें ही पड़ा रहा, तो ऐसे संन्यास और मोहमें फ़र्कही क्या है? कर्मयोगियों और आत्मत्यागियोंके पीछे वैराग्यकी उपाधि लगी रहे या नहीं, इससे कुछ आता-जाता नहीं है, उनकी तो विशुद्ध बुद्धि होनी चाहिये। उनके लिये उतनीही सावधानता रखनेकी सबसे बड़ी जरूरत है कि काजलकी कोठरीमें रहते हुए भी उनके दाग न लगने पावे। वास्तवमें संसारके अधिकांश लोग वैराग्यका अर्थ नहीं समझ सकते, यह बड़ीही दुर्भाग्यकी बात है। वैराग्यका अर्थ वेश बदलनाही नहीं है। वैराग्यका मतलब है—विशुद्ध भावसे जलती हुई भट्टीमें भी वासनाओंको जला डालना। वेश अलखकी खोजके लिये बदला जाता है—लालसाकी तृप्तिके लिये नहीं। इसके विपरीत होनेसे वैराग्य मृगतृष्णाही है। ऐसे ऊँचे दर्जेके वैराग्यके शिखरपर पहुँचनेके लिये सिर मुड़ाने या वेश बदलनेकी कोई जरूरत नहीं है। अलखकी खोज करनेके लिये अपने विकारोंको अलख बना देना, वासनाओंको अलखपर डालना, जीवन-प्रवाहमें स्वयं अलख हो जाना, यही वैराग्यकी परम दशा है। कदाचित्‌ही कोई गृहस्थ-वेशमें

आत्माका शोध करनेकी चेष्टा करता है। धर्म केवल उपाश्रय, देवालय, पोषधशाला, और सामायिक-प्रतिक्रमणकी क्रियाओंमेंही नहीं है; बल्कि अपनी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक विचार, प्रत्येक भावना, और प्रत्येक सम्बन्धकी शुभ नीति पर कायम है, इस लिये आत्मधर्मको पहचाननेवाले इन दोनों मनयोगी, वचनयोगी और काय-योगीकी तरह गुप्त रहनेवाले आदर्श दम्पतीकी बराबरीमें यदि चौरासी हज़ार साधु रखे जायें, तो क्या यह कोई अनुचित है? बोलो, अब भी तुम्हें सन्तोष हुआ या नहीं?"

यह कह केवली हँसते हुए जिनदासकी ओर देखने लगे, उन्होंने देखा कि उसके हृदयका अन्धकार दूर होकर उसके मुखड़े पर सत्यज्ञानका प्रकाश झलक रहा है, उसने कहा,—"प्रभो! मैं आजतक वेश देखकरही वैराग्यका अनुमान करता था। आज मैंने जाना कि वेश नहीं, बल्कि हृदय, मन और भावनाही वैराग्यके कारण हैं। अब मैं इन गृहस्थ योगियोंके दर्शन अवश्य करूँगा। आपके अमृतमय वचनोंसे मुझे बड़ा आनन्द हुआ।" यह कह जिनदास वहाँसे चल पड़ा।

---

# पाँचवाँ परिच्छेद।

## दीक्षा-ग्रहण।

अहा, इस संसारमें कितना विष भरा हुआ है और उसे देखते हुए केवलीके शब्द कैसे ज्ञानमय हैं! इस संसार-रूपी समुद्रमें जो अपने आप तैर नहीं सकता, उसके लिये वैराग्य तुम्बड़ीका काम देता है; परन्तु जिसने बचपनसेही तैरनेकी कला सीखी है, उसे तो तुम्बड़ी झंझटही मालूम पड़ती है। केवली आप भी परम त्यागी थे, तो भी वे इस स्वर्गीय गुणोंसे विभूषित दम्पतीकी बड़ाई करते थे। यह सब केवल ब्रह्मचर्यकाही प्रताप है। यह संयमका चमकता हुआ तेज था, और कुछ नहीं। इस तपको देखकर ब्रह्माण्ड हिल जा सकता है, इन्द्रासन कम्पित हो सकता है। फिर केवलीने प्रशंसाका पुल बाँध दिया, तो क्या बुरा किया? यह तो उनके लिये स्वाभाविकही था। जो संसारके भँवरजालमें पड़कर उसके प्रवाहमें न बह जाये और निष्कामवृत्तिसे काम करता है, वह बिना वैराग्य लियेही संसारसे तर जा सकता है। वैरागीका वेश रखने

वालोंसे साधु हृदयवाला गृहस्थ कुछ बुरा थोड़ेही है ? संसारी मनुष्योंको चाहिये कि उनके ऊपरी दिखावेसे उनको पहचाननेकी चेष्टा न कर उनके दिलके अन्दर छिपे हुए संस्कारोंके द्वारा उनकी परीक्षा करें। बहुतेरे सुगन्धित कमल जलमें रहते हुए भी उससे भींगते नहीं हैं—वैसेही बहुतेरी आत्माएँ संसार-जलमें रहकर भी उससे निर्लिप्त रहती हैं। इस बातके जीते-जागते उदाहरण थे—विजय सेठ और विजया सेठानी। यह सब सोचते हुए उस जिनदास नामक सेठने उनको अपने घर बुलवाकर जिमाना और चौरासी हज़ार साधुओंके खिलानेका पुण्य लूट लेना चाहा। सुपात्र-दानके इस अवसरको उसने हाथसे गँवाना अच्छा नहीं समझा। आनन्दसे उसका हृदय भर आया। उसने केवली भगवानके पाससे आकर घर पहुंचतेही कच्छ-देश जानेका विचार किया। उसने बिना विलम्ब किये वहाँकी यात्रा कर दी।

बहुत बड़ा धनवान होते हुए भी उसने रास्तेके सब दुःख-कष्ट हँसते-हँसते सहन कर लिये। उसके चेहरे पर मुस्कराहट, आँखोंमें तेज और हृदयमें उत्कण्ठा भरी हुई थी। वह बिना और किसी बातकी चिन्ता कियेही दिन-रात सफ़र करता चला जाता था। उसे केवल उस आदर्श दम्पतीके दर्शनोंकी अभिलाषा थी—और कोई चिन्ता उसके मनमें आतीही नहीं थी।

इसी तरह जाता-जाता एक दिन वह एक गाँवके पास आ पहुंचा। गाँवके किनारे कुछ पनहारियाँ जल भरने आयी थीं। वे जब पानी भरकर लौटने लगीं, तब सेठने उनके पीछे-पीछे

जाकर पूछा,—"बहनों ! मैं कुछ पूछना चाहता हूँ ।"

यह सुन एकने चिढ़कर कहा,—"हमें कुछ नहीं मालूम, पूछना हो तो किसी औरसे पूछ लो ।"

इतनेमें एक दूसरीने सहानुभूतिके स्वरमें कहा,—"भाई ! कहो न, क्या पूछते हो ? पूछो, यदि हमें मालूम होगा, तो बतला देंगी ।"

सेठ,—"भला मुझ परदेशीकी बातका कौन जवाब देगा ?"

वह,—"नहीं नहीं, तुम निसङ्कोच कहो । क्या कहते हो ?"

सेठ,—"बहन मैं एक गृहस्थ योगीन्द्रके दर्शन करने जा रहा हूँ ।"

वह,—"साफ़ कहो वह योगीन्द्र कौन हैं और कहाँ रहते हैं ?"

सेठ,—"मुझे तो पता नहीं ; पर उनका नाम विजय सेठ है । क्या इस ग्राममें विजय सेठ नामके कोई सज्जन रहते हैं ?"

वह,—"हाँ, रहते हैं; पर क्या कहा ? वे क्या योगीन्द्र हैं ?"

सेठ,—"हाँ, क्या तुम्हें इस बातका पता नहीं है ? खैर उनका घर कहाँ है ?"

वह,—"चलो, मैं बताये देती हूँ ।"

यह कह वह भलीमानस औरत जिनदासको अपने साथ लेकर रास्ता दिखाती हुई चली । थोड़ी दूर जाते-जाते रास्तेमें एक वृद्ध सज्जनको आते देख बोल उठी,—"भाई ! देखो, यही उनके पिताजी चले आ रहे हैं । यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इनसे बातें कर लो ।"

"अच्छा, बहन ! इस कष्टके लिये मैं तुम्हें बार-बार धन्य-

वाद देता हूँ। माफ करना; मैंने तुम्हें बड़ी तकलीफ़ दी।"

यह कह, वह उसी बूढ़ेकी ओर लपका और उसके पास पहुँचकर बोला,—"क्यों बाबा! क्या आपके पुत्रका नाम विजय सेठ है?"

बूढ़ा,—"हाँ, भाई! वह मेराही पुत्र है। आपको उससे क्या काम है?"

सेठ,—"बाबा! धन्य भाग्य जो आपके दर्शन हो गये। आप विजय सेठके पिता हैं, इसलिये मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।" यह कह वह बूढ़ेके पैरोंपर गिर पड़ा।

बूढ़ेने सङ्कोचमें पड़कर कहा,—"ओ भाई! क्या कहते हो? कौन पिता और कौन पुत्र है? तुम मेरे पुत्रकी इतनी बड़ाई किसलिये कर रहे हो? भला तुमने उसमें कौनसा ऐसा दैवी तत्व पाया, जिससे उसकी इतनी बड़ाई कर रहे हो?"

सचमुच बेचारे बूढ़ेको अपने पुत्रके अन्तर्गुणोंका कोई पता नहीं था। उनको क्या मालूम कि उनका पुत्र सांसारिक सुखोंसे विरक्त—साधुओंसे चढ़ा-बढा साधु है?

सेठने कहा,—"बाबा! वे योगीश्वर हैं। मैं उनकी प्रशंसा सुनकर सैकड़ों कोसकी दूरीसे दौड़ा हुआ चला आ रहा हूँ। भला जिनका नाम केवलीके हृदयमें बसा हुआ है, उनकी दिव्यताका आपको अभी तक पता नहीं है? इस संसारमें रहते हुए भी जो संसारसे विरक्त हो रहे हैं, एसे अपने पुत्रकी प्रभुताको आप क्या नहीं पहचानते?"

बूढ़ा तो यह सुनतेही चौंक पड़ा। योगीश्वर विरक्त और दिव्य आदि शब्द सुनतेही उसका माथा ठनका। तरह-तरहके सन्देह उसके मनमें पैदा होने लगे। उसने कहा,—"अरे मुसा-फिर! तू बकता क्या है? कहीं तू रास्ता तो नहीं भूल गया है?"

जिनदास,—"हाँ, मैं रास्ताही भूला हुआ हूँ; पर इस बार केवलीके बतलाये हुए रास्ते पर ढूँढ़ता-ढूढ़ता यहाँ आ पहुँचा हूँ। मुझे आश्चर्य तो इसी बातका है कि आप एकही घरमें रहते हुए भी अपने पुत्रकी प्रभुता नहीं पहचान सके। आपको मालूमही होगा कि सब व्रतोंमें शीलका पालन—सारा जीवन ब्रह्मचर्यका पालन करना कितना कठिन काम है। जैसे आगके पास आतेही घी पिघल जाता है, वैसेही विषयके फन्देमें पड़कर बड़े-बड़े महात्मा भी फिसल गये हैं। उपभोग और परभोगकी लालसामें पड़ गये हैं और मोहके बाणोंसे विंध गये हैं। ऐसी अवस्थामें आपके पुत्र सारे जीवनके लिये ब्रह्मचर्यका व्रत लिये बैठे हैं। तरह-तरहकी वासनाओंसे भरे हुए इस संसारमें रहते हुए भी आदर्श जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे आपके महान् पुत्र और व्रतधारिणी पुत्रवधूके दर्शन करनेके लिये ही मैं इतनी दूरसे चला आ रहा हूँ। अपना जीवन उनके दर्शन करके धन्य बनाने आया हूँ।"

यह सुनतेही बढ़ा तो सन्न हो गया और गहरी चिन्तामें डूब गया। बड़ी देरके बाद उसने पूछा,—"क्यों भाई! तुमने जितनी बात कही हैं, वे सब क्या सच्ची हैं?"

सेठने कहा—" बाबा ! आपका यह प्रश्न तो मुझे वैसेही मालूम होता है, जैसे कोई नन्दन-वनकी सुहावनी लताओंसे निकलती हुई सुगन्धके पास रहकर भी उसके धतूरा होनेकी शङ्का करे।"

अब तो बूढ़ेकी बुद्धि और भी चकरायी। उसने फिर पूछा—ऐं! तो क्या यह सब सच है ?"

सेठ,—"बाबा ! तो क्या मैं आपसे मज़ाक़ करता हूँ ? कहीं आपही तो मेरी दिल्लगी नहीं उड़ा रहे हैं ? सारा संसार जिस बातको जानता है, उसे आपही नहीं जानते, यह क्या माननेकी बात है। ?" यह कहता हुआ जिनदास मुस्कराने लगा।

बूढ़ा—"अच्छा भाई ! तो इस समय तुम्हें उससे क्या काम है ?"

सेठ—मैं केवल उनके दर्शन करके उनकी प्रतिष्ठा करना चाहता हूँ। बताइये, इस समय वे कहाँ मिलेंगे ?"

बूढ़ा—"भाई ! मुझे तो अपने इकलौते बेटेका यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर काठसा मार गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका यह व्रत मेरे जीवनको उज्ज्वल बनायेगा।"

इतनेमें सामनेसे पुत्रको आते देखकर बूढ़ेने कहा,—"वह देखो, मेरा पुत्र विजयकुमार चला आ रहा है।"

यह सुनतेही जिनदासने विजयकुमारकी ओर आँखें उठाकर देखा और हाथ जोड़े हुए बोला,—"पधारिये देव ! पधारिये। मेरे सहस्त्र-सहस्त्र प्रणाम स्वीकार कीजिये।" यह कह वह

विजयकुमारके पैरोंपर गिर पड़ा—उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानों उसके लिये मोक्षकालका प्रभात आ गया। मानों कोई देवदूत स्वर्गसे उतरकर उसके सामने खड़ा हो गया है।

अपने पैर पीछे खींचते हुए विजयकुमारने कहा—"क्यों भाई! यह क्या कर रहे हो? भला यह भी कोई बात है?"

जिनदासने कहा—"हे अपनी जीवन प्रतिभासे माताकी कोख उज्ज्वल करनेवाले, पिताके शौर्य-वीर्यको बढ़ानेवाले, जैन शासनके लाड़ले पुत्र विजयकुमार! मैं आपके अखण्ड ब्रह्मचर्य पर मोहित हो गया हूँ। हे महासाधु! आज यह दास आपसे एक भिक्षा माँगने आया है।" यह कहते-कहते जिनदासका हृदय गद्गद हो आया। इतनेमें विजयकुमारका पिता भी पास पहुंच गया। विजयकुमारने कहा—"पिताजी! चलो घर चलें। यह भिक्षुक कुछ भिक्षा माँगना चाहता है।" पिताको कुछ सोचमें पड़ा देख विजयने पूछा,—"पिताजी! यह आदमी कौन है?"

बूढ़ेने कहा—"यह तुम्हारे जीवन-नाटकका परदा हटानेवाला सरल दर्शन प्रार्थी है।"

यह सुनतेही विजय समझ गये कि पिताको मेरा भेद मालूम हो गया। वह कुछ भी न बोला और चुपचाप पिताके पीछे-पीछे घरकी ओर चला। घरके पास पहुंचने पर जिनदासने कहा—"बाबा! अब मुझे भिक्षा मिल जानी चाहिये।"

बूढ़ा—"कैसी भिक्षा?"

जिनदास—"आप एक महीनेके लिये अपने पुत्रको मेरे यहाँ

जाने दूं।" यह कह उसने बूढ़ेको सब बातें ब्योरेवार कह सुनायीं। सब सुनकर बूढ़ेके मनमें एक ओर क्षोभ और दूसरी ओर आनन्द भर आया। उसने तुरतही पुत्रको जानेकी आज्ञा दे दी।

सुन्दर वाहनोंमें बैठकर विजय सेठ और विजया सेठानी जिनदासके घर आये। उसने उन्हें सुपात्र-दानकी महत्ती इच्छा मनमें रखते हुए उन्हें भोजन कराया और सुपात्र-दानका फल पा लिया।

वहींपर विजयकुमारने अपनी स्त्रीसे कहा—देवी! अब हमें इस संसारसे अलग हो जाना चाहिये। हमें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये। तुम्हें यह प्रतिज्ञा याद है या नहीं?"

विजया—"क्यों प्यारे! कैसी प्रतिज्ञा?"

विजयकुमार—"वही कि माता-पिताको यदि हमारे व्रतका पता लग जायेगा तो हम दीक्षा लेलेंगे। क्या तुम भूल गयीं?"

विजया—नहीं मैं भूली नहीं हूँ।"

फिर क्या था? कल जो संसारी थे वेही आज साधु-धर्मका पालन करते हुए विचरण करने लगे और देह-सौन्दर्यकी ओर ध्यान न दे आत्मतेजकोही मूल्यवान् समझकर उसीके ध्यानमें डूबे रहने लगे। उन्होंने अपने आचरणसेही मानों संसारी मनुष्योंको यह उपदेश देना आरम्भ किया कि जीवनके व्यर्थके विकारोंके वशवर्त्ती होकर विभव-विलासमें बिताना बेकार और भयंकर है। हर एक मनुष्यको यह सोचना चाहिये कि हम किस लिये इस संसारमें आये हैं। यह जीवन विकारों और वितर्कोंमें बितानेके

लिये नहीं बल्कि आत्मिक प्रगति करनेके लिये मिला है। ऐसा करना प्रत्येक व्यक्तिका प्रधान और मुख्य कर्त्तव्य है। यह देह प्रभुका मन्दिर है। इसमें आत्मदेव विराजत हैं। वासनाके जालमें लिपटनेसे वे घबरा उठते हैं। ब्रह्मचर्यके दीपकसे इन आत्मदेवकी आरती उतारकर तेजस्वी और विशुद्ध बनाना चाहिये।

वे लोगोंको इसी प्रकारके उपदेश दिया करते थे। एकबार उनकी बातें सुनकर एकने कहा—"गुरुदेव! आप मुक्तिकी बातें तो करते हैं; परन्तु यह तो बतलाइये कि वह है क्या चीज़? और किसको मिल सकती है।" उन्होंने उत्तर दिया—"मुक्तिकी अभिलाषा करनेवालोंको यह जानना चाहिये कि मुक्ति कोई काल्पनिक पदार्थ नहीं है। अपनी ज़रूरतें पूरी करनेके लिये किसीकी गुलामी कबूल करलेनेवाले मनुष्य चाहे कैसाही साधुवेश क्यों न रखें, कितनीही उग्र तपस्या क्यों न करें; कितनीही पोथियाँ क्यों न पढ़ डालें; परन्तु उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्तिका परवाना तो सर्वत्र विजय करनेवाले जीवात्माकोही मिल सकती है। वही सदा मुक्त होता है; जिसने इन्द्रियाँ; अन्तर-शत्रुओं और बाह्य जगतके आर्षक पदार्थोंसे मुक्ति पा ली है। ऐसी मुक्त आत्माओंको दुनियाकी वाहवाही या लानत-मलामतकी परवा नहीं होती। उनकी प्रकृतिमें तनिकसा विकार नज़र नहीं आता। वह भूलभुलैयोंमें पड़कर अपनी आत्माको कलुषित नहीं करते। हाहाकार; क्लेश और भय उनसे दूरही भागते हैं। जगतके साथ व्यवहार करते रहने पर भी वह अपने धनी; पुत्र; पिता; मित्र;

स्वामी; नेता; भक्त या सेवक होनेकी बात भूल जाते हैं और उनकी स्वतन्त्र गगनविहारी आत्माएँ सदैव आत्मप्रदेशके गहरे समुद्रमें गोते लगाया करती हैं। ऐसेही लोग मुक्तिके सच्चे सार्थक बन सकते हैं।"

आदर्श साधुका यह उपदेश बन्द होनेपर एक और जिज्ञासुने पूछा,—"गुरुवर! यदि सभीको ऐसाही ज्ञान हो जाये; तब तो संसारमें सभीके लिये मुक्ति पाना; सहज हो जायेगा। क्यों ठीक है न?"

गुरुने कहा,—"यह आशा व्यर्थ की है। सारी दुनिया कभी एकसी समझदार नहीं हो सकती। ऐसी कभी हुई भी नहीं। जिससे अपनी आत्मा थोड़ी भी बलवान् बन सके या जिससे हमारी शक्तियाँ विकृत-बोधमें पड़कर नष्ट न होने पायें; इसके लिये थोड़ीसी जागृति हर एक मनुष्यमें होनी चाहिये। ऐसे जगे हुए पुण्यात्मा अपनी इच्छा-शक्तिके प्रभावसे लोक-समूहको अपनी रस्सीमें बांधकर ले जाते हैं।"

"गुरो! ये पुण्यात्मा कब पकेंगे?"

"इसमें पकनेकी क्या बात है? वे तो जगत की आँखोंसे प्रगट होंगे—या निद्रासे एक दिन जगनेवाले हैं।"

"कब जगेंगे?"

"जब वे नीचे खड़े होकर ऊँची नज़र करनेके बदले; पहाड़की चोटियोंपर बैठकर नीचेको प्रदेशका देखना चाहेंगे। जीवन-मरणके ख़्यालको तो जलाकर भस्मही कर देना चाहिये। पहले भर-

और जोखिमके डरसे काम बन्द करके भागनेका विचार छोड़ने वालोंको ही मुक्तिका साधक बनाया जायेगा। बाहरकी सहायता और दयासे मुक्ति नहीं मिलनेकी।"

"गुरुदेव! यदि बिना माँगे सहायता मिलती हो, तो क्यों नहीं लेनी चाहिये? यह बात तो मेरी समझमें नहीं आती।"

"महानुभाव! थोड़ी देर आंखें बंद करके यह विचार कीजिये कि जो दूसरेकी मददसे मोक्ष-मुक्तिके समान परम पदकी साधना करता है, उसका ऐश्वर्य किस कामका? जो अपनी सामर्थ्यको नहीं पहचान सकता, वह जगतके लिये कौनसा आदर्श स्थापित कर सकता है? जो अपनी शक्तिके स्थानमें दूसरोंकी सहायताके भरोसे व्यापार करता है; वह जरूर ही दिवालिया बन जाता है। खरा साहूकार तो वही कहलाता है, जो अपनी अक्ल चलाता और हड्डी तोड़ मिहनत करता है—भूखों मर जाता है; पर दूसरोंके सामने हाथ नहीं पसारता।"

"हाँ; सच्चा शक्तिमान् पुरुष औरोंके आगे हाथ नहीं पसारता; पर यदि शक्ति या सहायता आपसे-आप उसके पास आना चाहे, तो उसे स्वीकार कर लेनेमें कौनसी बाधा है?"

"हे भव्य पुरुष! खरे शक्तिशाली पुरुषकी भव्य मुखाकृति, उनका अपूर्व तेज और शक्ति देख कर उसके वीर हृदयसे डरकर प्रार्थना हरदम दूर भागी फिरती है। ऐसा परम देवत्व—सिद्धत्व प्राप्त करनेके लिये मैदानमें उतरो हुई आत्माकी शक्तिभरी गर्जनासे भयभीत हो कर प्रार्थनाकी प्रेतिनी थर-थर काँपा करती है।"

"ठीक है; पर यदि कदाचित् विना माँगे ही शक्ति आपसे मिल जाये, तव ?",

"हे भव्य ! मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर पहले ही दे चुका हूँ कि ऐसी परायी शक्तिके भरोसे आरामसे सोनेवाली और विजयकी कामना करनेवाली आत्माओंको कभी मुक्ति नहीं मिल सकती।"

यह सुन उस भव्य आत्माने कहा;—"प्रभो ! आपका आजक व्याख्यान सुन कर मुझे सच्चा ज्ञान हो गया ; इसमें सन्देह नहीं।" यह कह ; वह उन्हें प्रणाम कर चला गया।

इसी प्रकार आत्मशक्तिके कितने ही विचार लोगोंको सुनाते और उन्हें मुक्तिका सच्चा स्वरूप बतलाते हुए उन दोनों आदर्श स्त्री-पुरुषने आदर्श साधु-साध्वी बन कर केवल-ज्ञान प्राप्त करनेके अनन्तर मुक्ति लाभ की।

धन्य हैं वे माता-पिता; जिन्होंने ऐसे आदर्श स्त्री-पुरुषको संसारमें जन्म दिया, जिन्होंने ब्रह्मचर्यकी उज्ज्वल प्रतिमा सारे संसारमें प्रकट कर दिखायी। ऐसे वीर ब्रह्मचारी विजय सेठ और विजया सेठानीको बार-बार वन्दना है। धन्य है उनका संयम; धन्य है उनका व्रत-पालन! धन्य है एकका पत्नी-व्रत और दूसरीका परम उत्तम पातिव्रत !